अध्याय सूची।

मुसलमानी राज्य का इतिहास ।

दूसरा भाग ।

अस्त कांड ।

पहला अध्याय ।

औरंगज़ेब ।

शासन और विजय ।

औरंगज़ेब सन् १६५६ ई० में तख़्त पर बैठा। आपने पहले खंड में देखा है कि किस निर्दयता से उसने गोत्रघात किया। जब तख़्त का कोई दावीदार न रहा, जब बूढ़ा बापशाहजहां क़ैदख़ाने में मर गया, तब औरंगज़ेब की तबिअत में इतमीनान हुआ। औरंगज़ेब में सब से ख़ास बात यह थी कि वह बड़ा ही कट्टर मुसलमान था। वह हिंदुओं को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखता था। दारा पर ख़ास चार्ज यही

लगाया गया था कि वह हिंदूधर्म का पक्षपाती है। हालांकि दारा न तो हिंदू था और न हिंदूधर्म का पक्षपाती था। वह दयावान् राजकुमार केवल यह चाहता था कि हिंदुओं पर अत्याचार न हो, उनके धर्म में बाधा न पहुँचाई जाय। औरंगज़ेब इतना भी नहीं देख सकता था। अपनी दक्खिन की सूबेदारी में उसने एक ब्राह्मण को सिर्फ़ इसलिये मरवा डाला था कि उसने इसलाम की कुछ बातों का खंडन किया था। जिन लोगों ने अकबर की धार्मिक निष्पक्षता का वर्णन पढ़ा है और जो लोग आज न्यायी ब्रिटिश राज्य की धार्मिक स्वतंत्रता का भोग कर रहे हैं, उनको औरंगज़ेब की इस धार्मिक जड़ता से बड़ा दुख होगा।

ऐसे ही अन्यायी और अत्याचारी बादशाह के शासन का बोझ अभागे हिंदुओं पर पड़ा। तअस्सुब और तंगदिली पर औरंगज़ेब की बादशाहत की नींव पड़ी।

इतिहासलेखक कहते हैं कि औरंगज़ेब में बहुत से गुण ऐसे थे जो उसके पहले के मुग़ल बादशाहों में नहीं थे। वह न तो हुमाऊं की तरह रास्ता चलते शादी करता था, न अकबर की तरह मीना बाज़ार लगवाता था, वह जहांगीर की तरह तरुणी और वारुणी के नशे में भी चूर नहीं रहता था, शाहजहां की तरह विलास की वासना भी उसमें नहीं थी। औरंगज़ेब में शान शौकत बहुत कम थी, पहनने ओढ़ने और खाने पीने तक की उसको परवा नहीं रहती थी। वह

बहुत सादा पोशाक पहनता था और बहुत मामूली भोजन करता था। वह शराब न तो खुद पीता था और न और लोगों को पीने देता था। शराब की दुकानें बंद करवा दी गई थीं। भंग का पीना और बेचना भी मना कर दिया था। जुआ खेलना रोक दिया गया था। वेश्याओं के विवाह करवा दिए गए थे। बादशाह समझता था कि संगीत से कामुकता और विलासिता बढ़ती है इसलिये दरबार का गाना बजाना बिलकुल बंद कर दिया गया। गवैए बाहर कर दिए गए। बड़ों का अनुकरण करना लोगों में स्वाभाविक है। इसलिये दरबारी और रईसों ने भी गवैयों का अनादर किया। गान-विद्या लोप होने लगी। औरंगज़ेब की निंदा जगह जगह होने लगी। गवैयों ने बादशाह पर प्रभाव डालने के लिये एक जलूस निकाला। दिल्ली के एक हज़ार गवैए जुमे के रोज़ इकट्ठे हुए। बीस खूबसूरत तिकठियों को सर पर रखकर रोते कलपते ये लोग आगे बढ़े। यह हालत देखकर बादशाह ने इनके अफ़सोस की वजह पूछी। जवाब मिला कि गान-विद्या मर गई है उसी के गाड़ने की तैयारी है। बादशाह ने जवाब दिया कि मुर्दे को खूब अच्छी तरह गाड़ देना चाहिए।

बादशाहों का जन्म-दिन बड़ी धूम धाम से मनाया जाता था। लेकिन औरंगज़ेब ने इसको भी रोक दिया। उसकी सालगिरह पर सिर्फ़ ३ घंटे नौबत बजती थी और दरबारियों को पान सुपारी दी जाती थी। क़ायदा था कि रोज़ सुबह

बादशाह झरोखे पर बैठकर लोगों को दर्शन देता था। कुछ ऐसे भी पतित हिंदू थे जो दर्शन बिना पानी तक नहीं पीते थे।

औरंगज़ेब ने अपने राज्य के ११ वें साल में इस प्रथा को उठा दिया। क्लार्क लोग चांदी की दावातें काम० में लाते थे। औरंगज़ेब के वक्त में उनको मामूली दावातें दी गईं।

यह ज़रूर है कि उसने बड़ी निर्दयता से अपने भाई और भतीजों को मारा, बाप को क़ैद किया, लेकिन बादशाह होने पर उसने इसलाम के मुताबिक़ जहां तक मुमकिन था इंसाफ़ किया। अन्न सस्ता करने के लिये उसने चुंगी उठा दी। बंबई और सूरत के अँगरेज़ी व्यापारियों ने कहा था कि बादशाह न्याय का समुद्र है। रहन सहन देखने से वह फ़क़ीर मालूम होता था। सन् १६६५ ई० में जब दुमदार सितारा निकला था, औरंगज़ेब ने ४ हफ़्ते तक सिर्फ़ पानी और बाजरे की रोटी पर गुज़र किया था। बादशाह टोपी बनाकर बेचता और उससे गुज़र करता था।

अपनी सरलता और सदाचार के कारण औरंगज़ेब मुसलमान बादशाहों में सर्वोत्तम होता, हिंदू उसको धर्मराज का अवतार मानकर पूजते। लेकिन तअस्सुब (धार्मिक पक्षपात) ने उसके सब गुणों पर पानी फेर दिया। जिनका मत उसके मत से नहीं मिलता था उनके मुक़ाबिले में न्यायी और सदाचारी औरंगज़ेब घोर अन्यायी और दुराचारी हो

जाता था। उसके जीवन का इतिहास हिंदुओं पर किए गए अत्याचारों का इतिहास है। हिंदू किस तरह मारे और सताए गए, किस तरह उनके मंदिर तोड़े गए, इसका वर्णन आगे चलकर किया जायगा। जिन मुसलमानों का औरंगज़ेब से धार्मिक मतभेद था उन पर भी घोर अन्याय किए गए थे। इन अन्यायों का वयान भी दूसरे स्थान पर किया जायगा।

औरंगज़ेब के शासन के वर्णन के पहले उसके परिवार और अफ़सरों के विषय में कुछ लिखकर उसकी फ़तहयावियों का वयान किया जायगा। शाहजहां के क़ैद होने और मरने का हाल आप पढ़ चुके हैं। दारा, मुराद और शुजा के जीवन के अंतिम दृश्य आप अवलोकन कर चुके हैं। एक एक करके सब भतीजे भी खतम कर दिए गए थे। औरंगज़ेब की वहनों में जहांनारा वेगम और रौशनारा वेगम प्रसिद्ध हैं। औरों के विषय में कोई वात महत्त्व की नहीं है। आप जानते हैं कि जहांनारा वेगम अपने वाप शाहजहां और वड़े भाई दारा की तरफ़दार थी। शाहजहां के वक़्त में वह रनिवास की स्वामिनी थी और राजप्रबंध में भी उसका वड़ा अधिकार था। दारा को वह वहुत मानती थी। दारा आदमी भी ऐसा ही था कि लोग उसका आदर करें। दोनों के धार्मिक विचार एक थे। जहांनारा दारा को अपना गुरू मानती थी। दोनों ने मिलकर अपने गुणों और पितृभक्ति से शाहजहां को अपने हाथ में कर लिया था।

दारा को बादशाह बनाने के लिये जहांनारा ने बड़े बड़े यत्न किए थे, औरंगज़ेब को उसने बहुत समझाया था। लेकिन न तो दारा सा नेक और विद्वान् राजनीति की कुटिल चालों में औरंगज़ेब से पेश पा सकता था और न औरंगज़ेब धर्मशास्त्र के पचड़े में पड़कर अपना काम बिगाड़नेवाला आदमी था। दारा पराजित और अपमानित हुआ, बड़ी क्रूरता से उसका सर धड़ से अलग किया गया। शाहजहां आगरे के क़िले में क़ैद हुआ। देवी जहांनारा ने जैसे सुख के दिनों में आनंद भोग किया था वैसे ही दुख के अवसर में उसने आपत्ति का पहाड़ सर पर उठाकर पितृदेव की सेवा की। निर्दयी विधाता से इतना भी नहीं देखा गया। जेल का कष्ट भोगते हुए शाहजहां ने संसार से कूच किया। जहांनारा का अब इस जगत् में कोई सहारा नहीं रह गया। इतनी बात ज़रूर थी कि उसने अपने विभव के दिन में भी किसी का अहित नहीं किया था इसलिये वह आशा कर सकती थी कि इस कलियुग में भी निष्कारण उसको कष्ट नहीं पहुँचाया जायगा। शाहजहां के मरने पर जब औरंगज़ेब ने क़िले में प्रवेश किया, जहांनारा ने उसका बड़ा आदर किया। औरंगज़ेब ने भी सोचा होगा कि जिन लोगों के लिये जहांनारा कोशिश करती थी और कर सकती थी वे अब संसार में नहीं रहे। ऐसी दशा में उसको किसी तरह की तकलीफ़ देना बे-मतलब और ख़िलाफ़ मसलहत होगा।

नतीजा यह हुआ कि दोनों ने पुरानी बातों को भुला दिया। जहांनारा ने समझा कि औरंगज़ेब उसके बाप का क़ैद करनेवाला दुश्मन नहीं बल्कि दिल्ली का शाहंशाह और उसका सगा भाई है। औरंगज़ेब ने समझा कि वह उसके दुश्मन दारा के साथ साज़िश करनेवाली मशहूर जहांनारा बेगम नहीं है बल्कि विपत् की मारी और अभाग्य की सताई वह उसकी सौतेली नहीं सगी बहन है। क़ैद में शाहजहां के पैरों पड़कर उसने तीन बार औरंगज़ेब के लिये क्षमा-प्रार्थना की। शाहजहां पुरुष था, उसका हृदय उतना कोमल नहीं था, इसलिये उसने दो दफ़े इनकार किया। लेकिन प्यारी पुत्री के निवेदन को वह अंत में न टाल सका। कलेजा कड़ा करके टूटे फूटे शब्दों में उसने औरंगज़ेब को क्षमा किया। ऐसी दयावती देवी के साथ औरंगज़ेब सा क्रूर हृदय भी निष्कारण कठोरता का वर्ताव नहीं कर सकता था। औरंगज़ेब ने बहन की इज़्ज़त की और वह फिर रनिवास की स्वामिनी बनाई गई। हुक्म हुआ कि अफ़सर, दरबारी और अमीर आगरे के क़िले में बाहर से उसको सलाम करें। उसकी पेंशन १७ लाख रुपए सालाना कर दी गई। अक्टूबर सन् १६६६ ई० में वह आगरे से दिल्ली चली आई। अलीमर्दनखां की कोठी उसके रहने के लिये मिली। वहां औरंगज़ेब अकसर उससे मिलने जाता था और दोनों में घंटों बातें होती थीं। सन् १६६६ ई० में जहांनारा ने अपने घर से दारा की लड़की

जहांज़ेबबानू की शादी औरंगज़ेब के तीसरे लड़के मुहम्मद आज़म से की। बेगम साहब ने मुराद की लड़कियों की भी परवरिश की थी। सुलेमानशिकोह की लड़की सलीमाबानू की शादी औरंगज़ेब के लड़के मुहम्मद अकबर से हुई। बेगम साहब अकसर औरंगज़ेब को नसीहत भी दिया करती थीं। तारीख ६ सितंबर सन् १६८१ ई० में उसकी मृत्यु हुई। बादशाह ने तीन रोज़ तक रंज मनाया। हुक्म दिया गया कि जहांनारा बेगम के नाम के साथ सरकारी कागज़ात में 'साहिबतुज़्ज़मानी' का लक़ब लगाया जाय। बेगम साहब के मरने से विद्या, दया, सुशीलता, सहनशीलता और पितृ-भक्ति का एक बड़ा भारी समूह संसार से उठ गया। वैभव के दिन में, शाहजहां के ज़माने में, जब सारी सल्तनत उसकी मुट्ठी में थी तब भी उसने किसी को अनुचित हानि नहीं पहुँचाई। कारागार का दुख भोगते हुए उसने न तो शोक प्रकाशित किया और न अनुचित नम्रता दिखलाई। औरंगज़ेब की सब क्रूरताओं को भूलकर उसने पिता से उसको क्षमा-दान कराया। औरंगज़ेब के हाथों से फिर पहला अधिकार पाकर भी उसने बड़ा ही साधारण जीवन व्यतीत किया। संसार में ऐसी गंभीर आत्माएं बहुत कम आती हैं और जब आती हैं तो दुखियों को बहुत कुछ कष्ट हर लेती हैं।

औरंगज़ेब की दूसरी बहन रौशनारा बेगम में न तो बड़ी बहन की विद्या थी और न उसके उच्च विचार थे। जहांनारा

जिस तरह दारा का साथ देती थीं, रौशनारा उसी तरह औरंगज़ेब का साथ देती थीं। अंतर इतना ही था कि बड़ी बेगम ने अपने को उदारता के ऊँचे आदर्श से कभी नहीं गिराया लेकिन रौशनारा औरंगज़ेब की सहायता में औरंगज़ेब से भी नीच हो गई थीं। दारा के क़त्ल किए जाने में सब से अधिक हाथ रौशनारा बेगम का था। इससे अधिक नीचता और क्या हो सकती है। सिंहासन मिलने पर औरंगज़ेब ने इस प्यारी बहन को पांच लाख रुपए भेंट दिए। रौशनारा का मान जान भी बहुत था। लेकिन "नल-बल जल ऊंचो चढ़ै बहुरि नीच को नीच।" जहांनारा बेगम का आदर हुआ और रौशनारा का स्थान उसको मिल गया। बर्नियर का कहना है कि उसके अनुचित प्रेम का पता पाकर औरंगज़ेब रुष्ट हो गया। एक पुर्तगाली औरत ने बर्नियर से यह वृत्तांत कहा था। वह औरत शाही ज़नाने में बहुत दिनों तक रहती थी और वहां की अधिकांश बातों का उसका सच्चा अनुभव था। तिस पर भी मुग़लों के हिमायती इतिहासलेखकों ने इस बात को अलिफ़लैला की कहानी समझकर उड़ा दिया है। ईश्वर करे कि बर्नियर की बात झूठी हो। लेकिन कोई वजह नहीं मालूम होती है कि क्यों पुर्तगाली औरत ने इतनी निर्मूल कहानी गढ़ ली। एक विलासी मांसाहारी बादशाह की ऐश में पाली हुई, जवान और अविवाहिता लड़की से आजीवन ब्रह्मचारिणी रहने की आशा नहीं की जा सकती है।

मई सन् १६६२ ई० में औरंगज़ेब सख़्त बीमार पड़ा था। बीमारी के दिनों में रौशनारा बेगम ने बड़ी धींगा धींगी मचा दी थी। औरंगज़ेब के लड़के आज़म को तख़्त पर बैठाने के लिये वह तैयारियां कर रही थी। उसने सल्तनत का कुल काम अपने हाथ में ले लिया था। शाही मुहर की मदद से वह अपने हाथ से हुक्म निकालती थी। रौशनारा बेगम और उसके दोस्तों के सिवाय दूसरा आदमी बादशाह के पास नहीं जाने पाता था। खुद बादशाह की बेगम नवाब बाई ज़बरदस्ती निकलवा दी गई। उसके सर के बाल पकड़-कर खींचे गए थे। बीमारी से छुटकारा पाने पर औरंगज़ेब रौशनारा से बहुत नाराज़ हुआ, वह उसकी नज़रों से उतर गई। उसके बाद उसके विषय में कोई प्रसिद्ध बात नहीं हुई। तारीख ११ सितंबर सन् १६७१ ई० में रौशनारा बेगम का ५६ वर्ष की अवस्था में देहांत हो गया। कहते हैं कि उसके मरने के बाद औरंगज़ेब ने उसकी आत्मा के सुख के लिये बहुत ख़ैरात की।

औरंगज़ेब की लड़कियों में सब से बड़ी और मशहूर ज़ेबुन्निसा थी। अरबी और फ़ारसी विद्या में उसकी अच्छी योग्यता थी। उसने मुसलमानी धर्मग्रंथों को खूब देखा था और फ़ारसी कवियों की खूबी को वह अच्छी तरह समझती थी। वह खुद भी अच्छी कविता करती थी। मख़फ़ी के नाम से उसने एक अच्छा कविता-ग्रंथ लिखा था। मख़फ़ी

उसका तखल्लुस (उपनाम) था। इस दीवान की कविता की बड़ी प्रशंसा है।

ज़ेबुन्निसा की पहली शिक्षा मैयाबाई नाम की दाई से हुई थी। बड़ी होने पर मरियम नाम की स्त्री उसके पढ़ाने के लिये नियत की गई। मरियम हाफ़िज़ा थी। उसके संसर्ग से ज़ेबुन्निसा ने भी क़ुरान कंठस्थ कर लिया। ज़ेबुन्निसा अक्षर बहुत पुष्ट और सुडौल लिखती थी।

ज़ेबुन्निसा बेगम जिस तरह खुद विद्यावती थी वैसे ही विद्वानों का सत्कार भी करती थी। उसको ४ लाख रुपए सालाना खर्च के लिये मिलते थे। उसमें से अधिकांश साहित्य-सेवा में व्यय होता था। उसके मकान पर कवि कोविदों की अच्छी भीड़ रहती थी। अनेक विषयों पर अच्छे अच्छे ग्रंथ लिखने के लिये लोग नौकर रखे गए थे। एक पुस्तकालय भी खोला गया था जहां ग्रंथों का अच्छा संग्रह था।

कहते हैं आक़िलखां नाम के एक दरबारी से उसका अनुचित प्रेम था। विद्वान् लेखकों ने बड़ी बड़ी दलीलों से इस बात का खंडन किया है। न तो किसी स्वदेशी इतिहासलेखक ने इस प्रेम का वर्णन किया है और न टैवर्नियर, बर्नियर और मनूची ने इस बात का ज़िक्र किया है। ऐसी दशा में यह प्रेम-कहानी १६ वीं सदी के कुछ उर्दू-लेखकों की रचना मालूम होती है। जैसे उर्दू उपन्यासकारों ने आक़िलखां की कहानी गढ़ी है वैसे ही किसी

हिंदी उपन्यासलेखक ने ज़ेबुन्निसा के साथ छत्रपति शिवाजी को बदनाम किया है। इतिहास के पाठकों को ऐसे लोगों से सचेत रहना चाहिए।

औरंगज़ेब की दूसरी लड़की शाहज़ादी ज़ीनतुन्निसा ने कुमारी रहकर अपना समय बिताया। उसकी मसजिद का नाम है कुमारी मसजिद। आख़ीर दिनों में उसने औरंगज़ेब की बड़ी सेवा की। अब तक क़ायदा था कि मुग़ल शाही ख़ानदान की लड़कियां कुँवारी रहकर मर जाती थीं। लेकिन औरंगज़ेब ने शादी करने का तरीक़ा जारी किया। उसने अपनी दो लड़कियां मिहरुन्निसा और जबदुतुन्निसा की शादी कर दी थी। एक तीसरी लड़की बदरुन्निसा की भी शादी होने को थी लेकिन ब्याह के पहले वह मर गई।

क़ैदी शाहजहां ने शाप दिया था कि औरंगज़ेब के लड़के उसके साथ वैसा ही बर्ताव करेंगे जैसा उसने खुद अपने बाप के साथ किया। कुछ तो बूढ़े बाप की इस बददुआ का ख़्याल करके, कुछ अपने पापों के स्मरण से और सब से बढ़कर अपनी शक्की तबिअत की वजह से वह हमेशा चौकन्ना रहता था। अपनी चालाकी की बदौलत वह शाहजहां की तरह क़ैद तो नहीं किया जा सका लेकिन लड़कों से उसको भी बेहद तकलीफ़ मिली। आप देख चुके हैं कि उसका सब से बड़ा बेटा मुहम्मद सुल्तान सन् १६५६ ई०

में शुजा से मिल गया था। आठ महीने के बाद वह वापस आया और ग्वालियर के क़िले में क़ैद हुआ। १२ वर्ष तक वह वहीं जेल का कष्ट भोगता रहा। उसकी ग़ैरहाज़िरी में मुहम्मद मुअज़्ज़म को युवराज का दरजा मिला था। किसी कारण से मुअज़्ज़म भी पिता को प्रसन्न न रख सका। उसको दंड देने के लिये मुहम्मद सुल्तान ग्वालियर से वापस बुलाया गया। बादशाह ने उसको अपने पास बुला कर उसका क़सूर माफ़ किया। उसके मंसब और पेंशन वापस मिले। उसकी बहुत सी नई शादियां की गई। उसको आज़ादी के साथ साथ वलीअहद का दरजा मिल गया। उम्मीद की जाती थी कि औरंगज़ेब के बाद वह बादशाह होगा। लेकिन तारीख़ ३ दिसंबर सन् १६७६ ई० में उसका देहांत हो गया।

मुहम्मद सुल्तान के मरने पर मुअज़्ज़म राज्य का अधिकारी हुआ। पहले पहल सन् १६६३ ई० में २० वर्ष की अवस्था में मुअज़्ज़म दक्खिन का सूबेदार नियत हुआ जहां उसने १० वर्ष तक काम किया।

सन् १६७० ई० में लोगों ने बादशाह का दिल उसकी तरफ़ से बिगाड़ दिया था। कहा गया था कि शाहज़ादा बादशाह के हुक्म के ख़िलाफ़ अपने मन का काम कर रहा है। शाहज़ादा की मा नवाबबाई बेगम उसको समझाने के लिये भेजी गई। उसको तंबीह करने के लिये एक दरबारी

भी भेजा गया था। तहक़ीक़ात से शिकायत झूठी साबित हुई। लेकिन औरंगज़ेब के दिल में जब शक पैदा हो गया, उसका मिटना बड़ा मुश्किल था। मुअज़्ज़म सन् १६७३ ई० में दक्खिन से वापस बुला लिया गया। तीन वर्ष तक उसके दुख की घड़ी थी। सन् १६७६ ई० में मुहम्मद सुल्तान के मरने पर वह फिर युवराज हुआ। फिर उसका आदर हुआ। उसी सन् में उसको शाह आलम का ख़िताब भी मिला। सेनापति बनाकर वह अफ़ग़ानिस्तान भेजा गया। सन् १६७८ ई० में वहां से वापस आने पर कुछ दिन तक वह दरबार में रहा। सितंबर सन् १६७८ ई० में वह डेढ़ बरस के लिये फिर दक्खिन में भेजा गया था लेकिन कामयाब न रहा। राजपूत-युद्ध में भी वह लड़ता रहा। जब औरंगज़ेब दक्खिन गया, शाह आलम भी उसके साथ था। कहना यह है कि वह सब तरह से अपने पिता का कृपापात्र था लेकिन "युवती शास्त्र नृपति बश नाहीं"। लोगों ने उसकी खूब शिकायत की। नतीजा यह हुआ कि वह अपने लड़कों के साथ तारीख २० फ़रवरी सन् १६८७ ई० में क़ैद कर लिया गया। औरंगज़ेब ने उसकी प्यारी स्त्री नूरुन्निसा बेगम का अपमान कराया। उसको गालियां दिलाई गई। उसकी आज़ादी छीन ली गई। धन दौलत ज़ब्त कर लिया गया।

कुछ दिन के बाद औरंगज़ेब का दिल फिरा। उसने धीरे:

धीरे क़ैदख़ाने की सख़्ती कम करते करते तारीख़ ६ मई सन् १६६५ ई० में शाह आलम को आज़ाद कर दिया। वह मुल्तान भेजा गया और वहां से सूबेदार बनाकर अफ़ग़ानिस्तान रवाना किया गया। शाह आलम वैसे भी बहादुर नहीं था। लेकिन इस तरह लगातार सताए जाने से उसकी हिम्मत और भी टूट गई। उसने समझा क़ैद होने से बिहतर है कि किसी तरह ख़ुशामद करके बादशाह को राज़ी रखे। औरंगज़ेब को ख़ुश रखते हुए वह अपने बीबी बच्चों में चैन से दिन काटता था। दिन तो कटता जाता था लेकिन उसके कादरपने की शिकायत चारों तरफ़ होने लगी। बादशाह ख़ुद उसको बुज़दिल समझने लगा।

शाहज़ादा मुहम्मद आज़म शाह आलम की कमज़ोरियों से फ़ायदा उठाना चाहता था। यह बड़ा घमंडी और गुस्ताख़ था। औरंगज़ेब के सामने भी ग़ुस्सा और बदज़बानी करते हुए उसे डर नहीं लगता था। औरंगज़ेब इसको मानता था इसी लिये वह और सर चढ़ गया था। इलाहाबाद के सूबेदार मीरख़ां के उसकाने से आज़म ने बादशाहत हासिल करने का हौसला किया। बादशाह ने नाराज़ होकर मीरख़ां को बरख़ास्त करके उसका माल ज़ब्त कर लिया। आज़म से संभल की फ़ौजदारी ले ली गई। इतने बड़े क़सूर के लिये इतने सख़्त आदमी के हाथों से यह बहुत कम सज़ा थी। औरंगज़ेब का लड़का आज़म

सब से अधिक भाग्यवान् था क्योंकि सब से ज्यादा गुस्ताख़ होने पर भी बादशाह उसको मानता था। कई सूबों की सूबेदारी करने के बाद सन् १६८१ ई० में आज़म को शाही आलीजाह का ख़िताब मिला और वह दक्खिन का सूबेदार बनाया गया। शाह आलम की क़ैद की हालत में वलीअहद का दर्जा आज़मशाह को मिला था। जब शाहआलम को क़ैद से छुटकारा मिला, सन् १६९५ ई० के ईद के दिन आज़म से उसका झगड़ा हुआ। लड़ाई इस बात की थी कि बाप के दाहने बग़ल कौन बैठेगा। बादशाह ने खुद शाह आलम को अपने दाहने तरफ़ बैठाया। आज़म बाद में आया। आकर उसने अपने बड़े भाई का हाथ पकड़ा और पकड़कर उसको उठाना चाहा। वह चाहता था कि शाह आलम को उठाकर खुद बादशाह के दाहने बैठ जाय। बादशाह ने आज़म को खींचकर अपने बाएं तरफ़ बैठा लिया। उसके बाद आज़म ने किसी तरह का झगड़ा नहीं किया। सन् १६८३ ई० में उस पर बलवा करने की झूठी तुहमत लगी थी जिससे उसको बड़ी तकलीफ़ हुई। बादशाह ने उसको समझा बुझाकर खुश किया। औरंगज़ेब के लड़कों में खुलकर बग़ावत करनेवाला था मुहम्मद अकबर। शाहज़ादा अभी एक महीने का बच्चा था कि उसकी मा मर गई। इस वजह से बादशाह उसको बहुत मानता था। शाही ख़ानदान के सब लोग उसको मानते थे। उसको सब से

ज्यादा प्यार करती थी उसकी बड़ी बहन ज़ेबुन्निसा बेगम। वह उसको अपने प्राण से अधिक चाहती थी। भाई के लिये उसने बाप को नाराज़ करके बहुत कष्ट उठाया। १५ वर्ष की अवस्था में दारा की पोती से शाहज़ादे की शादी हुई। ४ वर्ष के बाद वह सूबेदार बनाया गया। सन् १६७९ ई० में वह अपने बाप के साथ राजपूत युद्ध में गया। इसी मौक़े पर लोगों ने बहकाकर उसको बाप से बाग़ी कर दिया। पिता पुत्र में बहुत दिन तक पत्र-व्यवहार हुआ। औरंगज़ेब अपने बाग़ी बेटे को पितृभक्ति सिखलाता था और अकबर अपने बाप की करतूतों का चित्र खींचकर दिखलाता था। शाहज़ादा ने साफ़ साफ़ लिख दिया कि जो खुद अपने बूढ़े बाप को क़ैद में सड़ा सड़ाकर मारता है उसको अपने लड़कों से फ़र्मां-बरदारी की उम्मीद करने का कोई हक़ नहीं है। उनके पत्र के नमूने दिए जायँगे जिससे पता चलेगा कि अपने बूढ़े बाप के चिढ़ाने के लिये औरंगज़ेब ने जो दलीलें पेश की थीं, अकबर उन्हीं को खुद उसके खिलाफ़ पेश करता था। अंतर इतना था कि औरंगज़ेब ने पहले शाहजहां को पिंजड़े में बंद कर लिया था तब उस पर वाक्य-बौछार डाली थी। मूर्ख अकबर ने तख़्त पर बैठे हुए ज़ालिम बाप बादशाह को चिढ़ाया। बाप के दुश्मन बादशाह औरंगज़ेब का इस दुनिया में कोई कुछ नहीं कर सकता था मरने पर चाहे कुछ भी हो। लेकिन अक-बर जिस बाप को चिढ़ा रहा था वह तख़्त पर बैठा हुआ

ताक़तवर बादशाह था, जीता जागता शेर था। उससे बग़ावत करने का जो नतीजा हो सकता है वही अकबर को मिला।

जब औरंगज़ेब को मालूम हो गया कि अकबर राजपूतों से मिल गया, उसने छल से काम लिया। उसने अकबर के नाम झूठी चिट्ठी लिखी जिसमें यह दिखलाया गया था कि शाहज़ादा अपने बाप की राय से राजपूतों को धोखा देने के लिये उनसे मिल गया है। चिट्ठी इस तरह भेजी गई कि वह राजपूतों के हाथ में पड़ी। सम्मुख लड़नेवाले बहादुर राजपूत छल-नीति में बिल्कुल कोरे थे। उनको मालूम हुआ कि अकबर उनका शत्रु है न कि मित्र। रातोंरात राजपूत सेना चलती हो गई। प्रातःकाल अकबर उठता है तो कहीं कोई नहीं। औरंगज़ेब कामयाब रहा। बाद में वीर राठौर दुर्गादास को असलियत का पता लग गया। वह झपटकर अकबर से आ मिला।

दुर्गादास की सहायता से अकबर महाराज शिवाजी के पुत्र श्रीशंभाजी के दरबार में पहुँचा। महाराज ने शाहज़ादे का अच्छा सत्कार किया। इसी बीच में औरंगज़ेब ने अकबर के नाम पत्र लिखा जिसमें प्रेम दिखलाते हुए उसने लिखा है—

"ख़ुदा जानता है कि मैं तुमको अपने सब लड़कों से अधिक प्यार करता हूं। लेकिन तुम अपनी बदक़िस्मती की वजह से मुजस्सिम शैतान राजपूतों के फंदे में पड़कर

बहिश्त की बरकतें छोड़कर दर दर भटक रहे हो। मैं क्या दवा कर सकता हूं, क्या इमदाद दे सकता हूं? मेरा दिल रंज में डूब गया जब मैंने सुना कि तुम मुसीबतें भोगते हुए बरबादी और परेशानी के सताए हुए भटक रहे हो। किन किन बातों का ज़िक्र करूं! जब ज़िंदगी तक मुझे भारी हो रही है। अफ़सोस सद-अफ़सोस! अगर अपने रुतबे का ख़्याल छोड़ा तो अपनी चढ़ती जवानी, बीवी और बच्चों पर तो रहम करता! ऐसा न करके तुमने अपने को राजपूतों के हाथों में डाल दिया जिनकी शक्ल हैवान की है और दिल भी हैवानी है। तुम पोलो के गेंद की तरह इधर उधर ठोकरें खाते फिर रहे हो। खुदावंद ताला ने हरएक बाप के दिल में क़ुदरती मुहब्बत पैदा की है, बावजूद तुम्हारे गुनाहों के मैं नहीं चाहता कि तुमको सज़ा दी जाय। बीती हुई बातों का ख़्याल छोड़ दो। अब भी अगर तुम्हारी क़िस्मत काम करे तो गुनाहों के लिये तोबा करो। तुम्हारी तकलीफ़ दूर होगी। तुम्हारे साथ मिहरबानी दिखलाई जायगी। तुम एक दफ़ा भी मेरे सामने आ जाओगे तो तुम्हारी बदनामी मिट जायगी। यशवंतसिंह ने दारा की मदद की लेकिन ज़िल्लत और बरबादी के सिवाय और क्या नतीजा हुआ! समझ रखो! खुदा तुमको अक़्ल दे, अब भी तुम ठीक रास्ते पर आओ।

शाहज़ादा अकबर ने जवाब दिया—

"××××××××××हजूर ने लिखा है कि यशवंत दारा के साथ था लेकिन दारा की बरबादी हुई, इसलिये इस झूठी क़ौम राजपूत का यक़ीन नहीं करना चाहिए। ×××× अगर दारा राजपूतों के कहने पर चला होता तो जो बातें हुईं वे कभी नहीं होतीं। शाहंशाह अकबर और दूसरे शाहंशाहों ने इसी क़ौम की मदद से हिंदुस्तान पर बादशाहत की थी। ××× भला हो इस क़ौम का। इस क़ौम की नमकहलाली और फ़र्मांबरदारी की तारीफ़ है कि यह अपने मालिक के बच्चों के लिये अपनी जान न्यौछावर करने को तैयार रहती है। ×××× हज़ूर के राज में वज़ीरों को कोई अख़्तियारात नहीं दिए गए हैं, शरीफ़ों का एतबार नहीं है, सिपाही भूखों मर रहे हैं, मुसन्निफ़ बेरोज़गार हैं, तिजारत पेशा बिला हैसियत और बेरोज़गार हैं। किसान कुचले जा रहे हैं। ×××××× ख़ानदानी रईस और फ़र्मांबरदार नौकर निकाल दिए गए। राय देने का काम मिला है जुलाहे, धुनिए, दर्ज़ी और दूसरे कमीने लोगों को। ××× ऐसी सूरत में जब हज़ूर के सुधरने की कोई उम्मीद नहीं रही, मैंने मुनासिब समझा कि खुद बुराइयों को दूर करूं। ××× कितनी खुशी की बात होगी कि हज़ूर को खुदा ऐसी नसीहत दे कि हज़ूर सल्तनत का काम इस नाचीज़ लड़के के हाथ में छोड़कर मक्के शरीफ़ तशरीफ़ ले जायँ। ऐसा करने से सारी दुनिया हज़ूर की तारीफ़ करेगी। अब तक

हजूर ने दुनियावी चीज़ों की तलाश में दिल लगाया। दुनिया के ऐशो आराम ख़्वाब ग़फ़लत की तरह हैं, बमिस्ल साया हैं। अब वक्त है कि आइंदा दुनिया की तैयारी करें और उन गुनाहों के लिये माफ़ी हासिल करें जिनको हजूर ने अपने वालिद माजिद को क़ैद करके और शरीफ़ भाइयों को क़त्ल करके किया है। ××× हजूर ने जो मेरे हाज़िर होने की वाबत फ़र्माया है उसकी वाबत यह अर्ज़ है कि उसकी तामील में मुझको ख़ौफ़ मालूम होता है जब मैं उस वर्ताव पर ग़ौर करता हूं जो हजूर ने अपने वाप और भाइयों के साथ किया है। ×××"

शंभाजी के यहां से अकवर बंबई में युरोपियन लोगों के पास गया। वहां से जहाज़ पर ईरान गया। शाह फ़ारस ने शाहज़ादे की खातिर की लेकिन वाप बेटे की लड़ाई में मदद देना उसने मुनासिब नहीं समझा। शाह ने इतमीनान दिलाया कि औरंगज़ेब के मरने के वाद भाइयों की लड़ाई में वह अकवर की मदद करेगा। अकवर के लिये अब और कोई चारा नहीं रहा। वह बैठ कर अपने वाप के मरने के लिये प्रार्थना करने लगा। लेकिन वह सन् १७०४ ई० में अपने वाप से ३ वरस पहले मर गया। औरंगज़ेब के चारों लड़कों का संक्षिप्त वर्णन किया गया। अब उसके वज़ीरों और अफ़सरों का हाल लिखा जायगा।

मुसलमान बादशाहों के दरबार में एक वज़ीर आज़म होता था जिसकी मातहती में बहुत से दीवान रहते थे जिनमें एक एक के ज़िम्मे एक एक सीग़ा रहता था। वैसे तो वज़ीर आज़म को बादशाह के बाद सल्तनत का पूरा अख़्तियार था लेकिन कभी कभी दीवान का काम भी उसको दे दिया जाता था। मुसलमानी ज़माने में हिंदू दीवान बहुत से हो गए हैं लेकिन किसी हिंदू वज़ीर आज़म का होना पाया नहीं जाता है।

तारीख ७ जुलाई सन् १६५६ ई० में मीर जुमला वज़ीर आज़म मुक़र्रर हुआ। लेकिन ५ महीने के बाद वह दक्खिन में युद्ध के लिये चला गया और उसकी जगह पर उसका लड़का मुहम्मद अमीनखां नायब की हैसियत में काम करने लगा। लेकिन उस वक़्त दारा की चलती थी। वह कब चाहता कि उसके दुश्मन औरंगज़ेब का साथी इस बड़े उहदे पर रहे। उसनें शाहजहां के हुक्म से मीर जुमला को मंत्री पद से हटा दिया। जाफ़रखां उसकी जगह पर मुक़र्रर हुआ। नायब दीवान रघुनाथ खत्री माल के सीग़े का काम करता रहा। रघुनाथ बड़ा ही लायक़ और ईमानदार अफ़सर था। माल के मुहकमे में जहां और लोग मालामाल हो जाते थे रघुनाथ ने कभी बेईमानी का पैसा छुआ तक भी नहीं। वह सदा बेईमानी रोकने की कोशिश करता रहा। उसके देखते देखते किसानों का अनभल नहीं होने पाता था। पहले पहल

वज़ीर सादुल्लाहखां ने रघुनाथ के गुणों को पहचाना और उसको माल के सीगे में नौकर किया। बढ़ते बढ़ते रघुनाथ नायब दीवान हो गया। दीवानी का दरजा उसको नहीं मिला लेकिन बहुत दिनों तक वह दीवानी का भी काम करता रहा। बादशाह होने पर औरंगज़ेब ने रघुनाथ को बदस्तूर उसके दरजे पर क़ायम रखा और राजा का खिताब भी दिया। सन् १६६३ ई० में सुयोग्य राजा रघुनाथ का देहांत हो गया। बादशाह होने पर बहुत दिन तक औरंगज़ेब ने कोई वज़ीर नहीं मुक़र्रर किया। जगह मीर जुमला के लिये खाली रखी गई। लेकिन मीर जुमला के वापस आने की नौबत नहीं आई। दौलताबाद से रवाना होते हुए शुजा का पीछा करने के लिये वह बंगाल चला गया। वहीं मार्च सन् १६६३ई० में उसका देहांत हो गया।

मीर जुमला के मरने पर फ़ाज़िलखां वज़ीर मुक़र्रर हुआ। यह बड़ा ही सदाचारी और विद्वान् अफ़सर था। शाहजहां इसको बहुत मानता था। योग्यता के कारण औरंगज़ेब ने भी इसकी खातिर की लेकिन इस नए बादशाह का आदर उसने बहुत थोड़े दिन तक भोगा। तारीख ७ जनवरी सन् १६६३ ई० में वह वज़ीर मुक़र्रर हुआ था और १६ दिन बाद तारीख २३ जनवरी को दुनिया से कूच कर गया। उसी सन् में अगस्त के महीने में जाफ़रखां वज़ीर आज़म मुक़र्रर हुआ और तारीख ६ मई सन् १६७० ई० तक इस पद पर

रहा। शाहजहां की बीबी मुमताज़महल बेगम की बहन से जफ़रखां का ब्याह हुआ था। इस कारण से इस वज़ीर की बड़ी प्रतिष्ठा थी। खुद शाहंशाह शाहजहां इसके घर आते जाते थे। औरंगज़ेब ने पहली दफ़ा जब इसको मंत्री पद से हटाया था, तो मालवा का सूबेदार बनाया था। लेकिन विवश होकर औरंगज़ेब ने योग्यता स्वीकार की और जफ़रखां को प्रधान मंत्री पद दिया।

जफ़रखां बड़ा ही दयावान् और विद्वान् आदमी था। लेकिन उसमें शराब पीने की खराब आदत पड़ गई थी। औरंगज़ेब ने उसको कई बार समझाया लेकिन वृद्धावस्था में स्वभाव का अचानक बदल देना आसान नहीं था। औरंगज़ेब अक्सर वज़ीर के घर आया जाया करता था। तारीख ६ मई सन् १६७० ई० में वज़ीर आज़म जफ़रखां का इंतकाल हो गया।

इसके बाद बहुत दिनों तक औरंगज़ेब ने कोई वज़ीर मुक़र्रर नहीं किया और खुद राजा और मंत्री दोनों पदों का काम करता रहा। ऐसा करने की वजह यह थी कि औरंगज़ेब जिसको मंत्री बनाना चाहता था वह अभी कम उम्र था। इस अफ़सर का नाम असदखां था। यह बहुत खूबसूरत और होशियार आदमी था। शाहजहां इसको बहुत मानता था लेकिन उसके वक़्त में इसको कोई बड़ा दरजा नहीं मिल सका। जफ़रखां के मरने के वक़्त असद सिर्फ़ दो हज़ार

सवारों का सरदार था। उस वक़्त इसकी उम्र सिर्फ़ ४८ वर्ष की थी। इस उम्र में और इतने छोटे अफ़सर को अचानक ऐसे ऊँचे दरजे पर पहुँचा देने से बूढ़े लोग बहुत नाराज़ होते। यही ख़्याल करके कुछ दिन के लिये औरंगज़ेब ने अपना इरादा मुल्तवी किया। जफ़रख़ां के मरने पर सन् १६७० ई० में असदख़ां नायब दीवान मुक़र्रर हुआ। तारीख़ ८ अक्टूबर सन् १६७६ ई० में वह वज़ीर आज़म बनाया गया। ५० वर्ष से अधिक अवस्था के आदमी को पुराने बुजुर्ग लोग महज़ लौंडा समझते थे। काबुल के सूबेदार महाबतख़ां ने इसकी बाबत एक ज़ोर की चिट्ठी बादशाह के पास भेजी थी, जिसमें दिखलाया गया था कि असदख़ां से नामर्द के वज़ीर होने से कितनी बुराइयां हो रही हैं। तजरबे से मालूम हुआ कि महाबतख़ां का लिखना सरासर ग़लत था। नए वज़ीर ने बड़ी ख़ूबी से अपना काम अंजाम दिया। ३१ वर्ष तक उसने नए पद पर काम किया। सब लोग उससे खुश थे। उसमें अगर कोई बुराई थी तो यह थी कि वह पेयाश था और रंडी मुंडी का बड़ा शौक़ीन था। औरंगज़ेब के मरने के ९ वर्ष बाद सन् १७१६ ई० में ९४ वर्ष की अवस्था में उसका देहांत हुआ।

अँगरेज़ी राज्य में जो काम जज लोग करते हैं वही काम मुसलमानी ज़माने में क़ाज़ी लोग करते थे। औरंगज़ेब के क़ाज़ियों में सब से ऊँचा पद था क़ाज़ी अब्दुलवहाब का।

आप बोहरा मुसलमान था। माड़वारी और पारसियों की तरह बोहरे लोग भी तिजारत पेशा होते हैं। पहले ये लोग हिंदू थे लेकिन बाद में मुसलमान हो गए। अब्दुलवहाब शाहजहां के वक़्त में पत्तन का क़ाज़ी था। जब औरंगज़ेब ने बूढ़े बाप को क़ैद करके तख़्त पर ज़बरदस्ती अपना आसन जमाया, सब क़ाज़ियों ने इसको गुनाह ठहराया लेकिन मतलबी वहाब ने औरंगज़ेब का साथ दिया। उसने कहा चूंकि शाहजहां बूढ़ा बेकार और कमज़ोर हो गया था, औरंगज़ेब का ख़ाली तख़्त पर बैठना इसलाम के ख़िलाफ़ नहीं है। इस पहसान को और ऐसे पक्के मुसलमान को औरंगज़ेब कब भूल सकता था? वहाब साहब सब से बड़े क़ाज़ी मुक़र्रर किए गए। औरंगज़ेब न सिर्फ़ मज़हबी मामलों में बल्कि सल्तनत के इंतिज़ाम में भी कलाममजीद पर अमल करता था। इसलिये अब्दुलवहाब की तूती बोलने लगी। हर मामले में उसकी राय ली जाती थी। वह अव्वल नंबर का बेईमान और बेरहम था। मातहत क़ाज़ियों की जगह ख़ाली होने पर रुपए लेकर वह लोगों को मुक़र्रर करता था। हर एक मुक़द्दमे में वह रिशवत लेता था। उसने छिपे तौर पर जवाहिरात की एक दूकान भी की थी। इन कई तरह की बेईमानियों से उसने १६ वर्ष में कुल ३३ लाख रुपए और बहुत से जवाहिरात इकट्ठे किए।

वहाब के मरने पर उसका बड़ा लड़का शेख़ुल इसलाम

उसकी जगह पर मुक़र्रर हुआ। बेटा उतना ही ईमानदार था जितना कि बाप बेईमान था। उसने विरासत में मिले हुए पाप के पैसों को हाथ से भी नहीं छुआ। बाप का धन दौलत उसने खैरात कर दिया। रिशवत के वह पास नहीं जाता था। दोस्त और रिश्तेदारों तक की डालियां क़बूल नहीं करता था। वह हमेशा इंसाफ़ करता था। झूठे गवाहों के बयानात सुनकर वह घबरा उठता था। कितने दफ़े उसने इस काम से छुटकारा लेना चाहा लेकिन औरंगज़ेब ने नामंजूर किया। बीजापुर और गोलकुंडा की लड़ाई के लिये औरंगज़ेब ने *उससे फ़तवा लेना चाहा। इस ईमानदार अफ़सर ने ऐसा* करने से इनकार किया और साफ़ साफ़ कह दिया कि ऐसा करना क़ुरान और इसलाम के खिलाफ़ होगा। विवश होकर अपना ईमान बचाने के लिये इसने सन् १६८३ ई० में इस्तीफ़ा दे दिया और मक्के चला गया। वापस आने पर वह पत्तन में रहता था। बादशाह ने कई बार उसको बुलवाया और नौकरी करने के लिये कहा लेकिन उसने क़बूल नहीं किया। आखिर में बादशाह ने लाचार होकर अपने हाथ से उसको खत लिखा और दरबार में बुलाया। शेखुल इसलाम डरते हुए दरबार में चला। रास्ते में वह प्रार्थना करता था कि किसी तरह झंझट से छुटकारा मिले। उसकी विनती सुन ली गई। दरबार में पहुँचने के पहले इस देवता तुल्य मनुष्य का प्राणांत हो गया।

उसके बाद अब्दुलवहाब के दामाद सैयद अबू सईद को यह पद मिला लेकिन ससुर के गुण आपमें भी थे। डेढ़ बरस के बाद अपनी रिशवतखोरी की वजह से आप बरखास्त हो गए। अंत में यह पद मुल्ला हैदर को मिला, जो पहले शिवाजी के यहां नौकर था। शिवाजी का वर्णन आपको आगे चलकर मिलेगा।

सिंहासन पर बैठने पर औरंगज़ेब ने नए नए मुल्क जीतकर अपनी सल्तनत बढ़ानी चाही। इसके लिये उसने जी जान से कोशिश की। सब से पहले पलामू पर चढ़ाई हुई। पलामू का ज़िला विहार सूबे के बाहर दक्खिन तरफ़ बसा हुआ है। देश पहाड़ी और जंगली, नदी और नालों से भरा हुआ है। सन् १६६० ई० में दाऊदखां को पलामू पर चढ़ाई करने का हुक्म मिला। ३ मार्च सन् १६६१ ई० में वह कई फ़ौजदारों के साथ रवाना हुआ। कूठी का क़िला तारीख़ २४ अप्रैल को ले लिया गया। उसके बाद कुंडा पर चढ़ाई हुई। बड़े ज़ोर की लड़ाई हुई और सन् १६६२ ई० में पलामू फ़तह हुआ और मुग़ल सल्तनत में मिला लिया गया।

पलामू के बाद आसाम का नंबर आया। जब शुजा ढाके से भागकर चला गया, औरंगज़ेब कूचविहार और आसाम के राजाओं से बहुत नाराज़ हुआ। इन लोगों को सज़ा देने के लिये मीर जुमला तैनात किया गया। तारीख़ १

नवंबर सन् १६६१ ई० में वह ढाके से रवाना हुआ। तारीख़ १६ दिसंबर सन् १६६१ ई० में वह कूच की राजधानी में पहुँचा और तारीख़ १७ मार्च सन् १६६२ ई० में वह अहम की राजधानी में पहुँचा। तब तक बाढ़ आ गई और दुश्मन ने भी ज़ोर लगाया। मुग़ल सेना घिर सी गई और उसको बड़ी तकलीफ़ उठानी पड़ी। कितने लोग क़हत और हैज़े से मर गए। नवंबर तक यही दशा रही। बाढ़ हट जाने पर फिर धावा शुरू हुआ। जनवरी सन् १६६३ ई० में एक सुलहनामा हुआ जिसके मुताबिक़ बहुत सा मुल्क, हाथी और सोना बादशाह के भेंट हुए। आसाम की ख़राब आब हवा में कमज़ोर होकर तारीख़ ३० मार्च सन् १६६३ ई० में मीर जुमला का देहांत हो गया। ४ बरस तक सुलहनामे का अमलदरामद था। नवंबर सन् १६६७ ई० में आसामियों ने गोहाटी जीत लिया और मुग़लों को धुवरी तक हटा दिया।

दुश्मन को परास्त करने के लिये एक बड़ी सेना लेकर राजा रामसिंह भेजे गए। सन् १६६६ ई० से १६७६ ई० तक लड़ाई होती रही। रामसिंह ना-कामयाब रहा और वापस बुला लिया गया। सन् १६७८ ई० में एक अहम सरदार ने मुग़लों के हाथ गोहाटी बेच दिया लेकिन दो बरस के बाद अहम राजा ने इसको फिर वापस ले लिया।

फ़िरंगी डाकू चटगांव में बड़ी लूट मार मचाया करते थे। इससे लोगों की जान और माल का बड़ा नुक़सान

होता था। अराकान का राजा इन डकैतों की सहायता किया करता था। शाइस्ताखां ने पहले फ़िरंगियों को फोड़कर अपनी ओर कर लिया। फिर इनकी सहायता से उसने अराकान की समुद्री सेना को दो दफ़े शिकस्त दी। तारीख २६ जनवरी सन् १६६६ ई० में चटगांव फ़तह हुआ और बंगाल के सूबे में शामिल कर लिया गया।

औरंगज़ेब के राज में सब से बढ़कर जीत यह हुई कि तिब्बत ने उसकी मातहती क़बूल कर ली। सन् १६६५ ई० में कश्मीर का सूबेदार बादशाह का ख़त लेकर तिब्बत भेजा गया। चिट्ठी में लड़ाई की धमकी दी गई थी, और वहां के राजा से दिल्ली की मातहती क़बूल करने और अपने मुल्क में इसलाम जारी करने के लिये लिखा गया था। राजा इतना डरा कि उसने ६ मील आगे बढ़कर शाही ख़त की पेशवाई की। हुक्म की तामील की गई। तिब्बत में मसजिद बन गई और जहां पहले मुसलमानी मज़हब का नाम भी नहीं सुना गया था, आज़ान दिया गया। दिल्लीश्वर के राजराजेश्वर होने की घोषणा दी गई। औरंगज़ेब के नाम के रुपए और मुहर ढाले गए। एक हज़ार अशर्फ़ियां, दो हज़ार रुपए और तिब्बत की बहुत सी अच्छी चीज़ें लेकर दूत वापस आया। राजा ने एक सोने की कुंजी भी भेंट की। इससे यह मतलब था कि देश की स्वतंत्रता और स्वधर्म सदा के लिये उसने औरंगज़ेब के हाथ अर्पण कर

दिया। ऐसे ही कादर और कुल-कलंक लोगों के लिये "मनुष्य-रूपेण मृगाश्चरंति" का वाक्य चरितार्थ होता है। पर्वत-मालाओं से आवेष्टित, वर्फ से ढके हुए तिब्बत में स्वतंत्रता-सूर्य की किरणें नहीं पहुँची थीं नहीं तो शताब्दियों के रक्षित जाति-गौरव का बलिदान इतने शीघ्र न हो जाता और न बुद्ध-धर्म के पवित्र तपस्थल में यवन मत का इतनी शीघ्रता से प्रवेश हो जाता। जिस तिब्बत में युरोपियन यात्रियों को भी भेष बदलकर डरते डरते आज आगे बढ़ना पड़ता है वहीं का राजा औरंगज़ेब के पत्र का स्वागत करने के लिये एक दो नहीं छ छ मील तक आगे बढ़ आवे! सब समय की महिमा है।

मोरंग-विजय

सन् १६६४ ई० में दरभंगा और गोरखपुर की पल्टनों की सहायता से मोरंग पर चढ़ाई हुई। लड़ाई अरसे तक होती रही लेकिन अंत में औरंगज़ेब की जीत हुई। गोरखपुर के सूबेदार अलावर्दीखां ने १४ हाथी और बहुत सी क़ीमती चीज़ें जो मोरंग से मिली थीं बादशाह के भेंट कीं। लेकिन कुछ दिन के बाद मोरंग-वाले स्वतंत्र हो गए थे, इसलिये शाइस्ताखां ने सन् १६७६ ई० में फिर उसको फ़तह किया।

कमाऊं का हमला

सन् १६६५ ई० में कमाऊं पर चढ़ाई हुई। श्रीनगर के राजा ने औरंगज़ेब से कहा था कि कमाऊं में सोना बहुत ज्यादा है। कमाऊं-नरेश ने अला-

वर्दीखां को लिखा कि यह बात बिल्कुल ग़लत है। कमाऊं फ़ौरन जीत लिया गया लेकिन पहाड़ और पहाड़ियों पर क़ाबू करना आसान काम नहीं था। बहुत दिन तक झगड़ा चलता रहा। राजा बराबर माफ़ी मांगता रहा। सन् १६७३ ई० में राजा को माफ़ी मिली।

बीकानेर का राजा राव करन पहले मुग़ल-सेना में नौकर था लेकिन दारा के कहने पर औरंगज़ेब से पूछे बिना वह दक्खिन से चला आया। औरंगज़ेब के बादशाह होने पर राजा ने शाही दरबार में आना छोड़ दिया। राजा को दंड देने के लिये सन् १६६० ई० में अमीरखां भेजा गया। राजा परास्त हुआ। उसको माफ़ी दी गई और वह २ हज़ार सवारों का अफ़सर मुक़र्रर हुआ।

बीकानेर दंड

चंपतराय बुंदेला का नाम आप सुन चुके हैं। आप यह भी देख चुके हैं कि वीरसिंह की जगह पर देवीसिंह उन्हीं की गद्दी पर बैठा। बुंदेलों ने इस जाति-द्रोही राजा के आधिपत्य को स्वीकार नहीं किया। चंपतराय की अध्यक्षता में उन लोगों ने स्वतंत्रता का युद्ध जारी रखा।

कुछ दिनों के लिये चंपतराय और उनके लड़के अंगद ने मुग़लों की नौकरी कर ली थी लेकिन आप दासत्व-दुख भोगने के लिये नहीं बनाए गए थे। जिसको किसी मृगनयनी के नयनबाण लग जाते हैं वह संसार को भूल जाता है। जिसको परमात्मा की लगन लग जाती है वह मस्त होकर

भटकता रहता है। ऐसे ही जिसको स्वतंत्रता देवी की भव्य और मनोहारिणी मूर्ति का एक बार भी दर्शन हो गया, कहीं दूर से झलक भी दिखाई पड़ गई, फिर क्या है! शम्श तबरेज़ और सरमद अगर हक़ (सत्य और ईश्वर) के लिये क़हक़हे लेते हुए सूली पर चढ़ गए तो कितने ही देशभक्त समय समय पर हक़ (स्वत्व) के लिये क़ुरबान हो गए।

स्वतंत्रता से बढ़कर होगी वस्तु न और मनोहारी।
जिसकी रक्षा-हित तन मन धन सर्वस अपना बलिहारी॥
स्वतंत्रता से हीन मनुज हैं पशु औ कीट समान।
होने से परतंत्र भला है रहे न तन में प्रान॥

माता स्वतंत्रता ने वीर चंपत को अपनी झांकी दिखला दी थी। वह यवनों की जूती उठाने का काम नहीं कर सकता था। अस्तु वह बुंदेला वीर फिर भूखे शेर की तरह भटकने लगा। शुभकरन बुंदेला तथा दूसरे राजपूतों की सेना उसको पकड़कर पींजड़े में डालने के लिये तैनात की गई। कहां तो वीर अपनी जान पर खेलकर हिंदूजाति, आर्यधर्म और भारतमाता के चरणों पर अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिये वन वन भटकता था, कहां माता के दूसरे पुत्र उसको दंड देकर माता के पैर बेड़ियों से जकड़ने के लिये तैयार हो गए। हिंदूजाति के लिये यह कोई नई बात नहीं है। यह इस जाति की सब से बड़ी निर्बलता है। राक्षसों की लंका में

सिर्फ़ एक विभीषण पैदा हुआ था। एक ही विभीषण की बदौलत अनहोनी बातें हो गईं। सोने की लंका भस्म हो गई, पत्थर पानी पर तैरने लगे, रावण और कुंभकर्ण के वीर वंश में आज पानी देने को कोई नहीं रह गया। लंका में एक था लेकिन इतिहास और अनुभव से पता चलता है कि भारतवर्ष में प्रांत प्रांत, नगर नगर, ग्राम ग्राम, घर घर में हिंदू विभीषण आपको दिखाई पड़ते हैं। जिनके निवासस्थान ठीक विभीषण की कुटिया की तरह "राम-नाम-अंकित गृह" हैं, बाहर भी "नव तुलसी के वृंद बहु" चरितार्थ होता है उनके लिये अपने घर का भेद दे देना, भाई को पकड़वा देना, देश का सत्यानास कर देना बाएं हाथ का खेल है। संसार को मालूम है कि हिंदुओं में जन है, धन है, बल है, पराक्रम है, सदाचार और आस्तिकता है। ऐसी जाति अगर एक होकर खड़ी रहेगी तो संसार को कँपकँपी लगी रहेगी। इसी लिये समय समय पर अपना मतलब साधने के लिये लोगों ने हमारे घर में फूट पैदा की है। इसमें उन लोगों का उतना दोष नहीं है जितना हमारा अपना। देश और जाति पर जब कोई दुश्मन चढ़ाई करता है, हम मुँह काला करके छिप जाते हैं। लेकिन जब कोई वीर हिंदू, कोई माता का लाल अपना प्राण देकर कर्तव्य पालन करने को उठता है तब हमारी बुद्धि खुलती है, हाथों में बल आ जाता है, शरीर में तेज प्रवेश कर जाता है। कसाई के कुत्तों की तरह

हम भूंकने लगते हैं, काटने को दौड़ते हैं, अपने भाई को काट भी लेते हैं और काटकर कभी कभी उसको मार भी डालते हैं। अच्छा होता कि ऐसे नीच कर्म करते समय हमारे शरीर निष्प्राण हो जाते, हाथ कटकर गिर जाते। हिंदुओं में जब तक संगठन न होगा तब तक देशहित के गीत से भला होने का नहीं। हम में बड़ा भारी ऐब यह है कि हमारी उदारता और संकीर्णता दोनों हद को पहुँची हुई हैं। जो पत्थरों तक में परमात्मा का दर्शन करते हैं, मंदिरों की सजावट में लाखों खर्च कर देते हैं वे अपने भूख से कलपते हिंदू बच्चे को मूठी भर चना देने के रवादार नहीं हैं। जो गांव के भीटों पर मीलों घूम घूमकर चीटियों के बिलों पर आटा छींटते रहते हैं, वे भाई की गर्दन पर छुरी फेरने के लिये, किसी देशभक्त की भूठी निंदा करके अफ़सरों की कुर्सी तोड़ने के लिये सबसे पहले तैयार रहते हैं।

हमको चाहिए कि इन दोनों तरह की अधिकताओं के बीच में आकर जातीयता और अपनपौ के भावों पर आचरण करें। हम लोगों को समझ लेना चाहिए कि अगर हिंदू मिलकर, एक होकर, नहीं रहेंगे तब तक दुनिया में उनका नामों निशान नहीं रहेगा। खुदग़र्ज़ी के भाव को एकदम निकाल दीजिए। अगर अपने को पशु की श्रेणी में गिराकर अपने देश का अहित करके आपने अपना स्वार्थ साधन कर लिया तो क्या! याद रखिए कि आपका यह-

स्वार्थ मृगतृष्णा है। हिंदूजाति का अहित करके आपका हित हो ही नहीं सकता है, क्योंकि आप उस विशाल चंदनवृक्ष की एक मुरझाई टँघनी हैं। वृक्ष काटकर क्या शाखा की रक्षा हो सकती है। आप हरे भरे तभी तक रहेंगे जब तक पेड़ हरा भरा रहेगा। अलग हो जाने पर रोज़गारी आपको काट डालेंगे। काटकर आपकी पत्तियां अलग सूख जायँगी, डाली के छोटे छोटे बालिश्त भर से भी छोटे टुकड़े कर दिए जायँगे। भक्त लोग खुरखुरे पत्थर पर आपको खूब रगड़ेंगे। रगड़ रगड़कर आपको घिस डालेंगे। आपका शरीर पिसकर सुगंध पैदा करेगा और आपके काटनेवाले के ललाट की शोभा बढ़ावेगा लेकिन आपके लिये क्या! कहां वह हवा के ठंढे झोंके, कहां वह वन की एकांत भूमि, पर्वत का वह सुरम्य पड़ोस, गंगा की वह हरहराती धारा, पास में हरित मलय पादप, उसकी गोद में लहराती और मँचलाती शाखा आप! कहां हत्यारे के संदूक़ में सात तह कपड़े में लपेटे हुए अपनों से इतनी दूर आप! आर्य का म्लेक्ष के हाथों में पड़ना वैसा ही है जैसा चंदन का चमार के हाथ में पड़ जाना।

"चंदन पड़े चमार घर नित उठि छीलै चाम।
रोवै चंदन सर धुनै पड़ा नीच से काम॥"

राजपूतों का औरंगज़ेब की ओर होकर चंपतराय का पीछा करना ऐसा ही था। जब शुभकरन और उसके साथियों

को सफलता नहीं हुई, देवीसिंह की मातहती में दूसरी सेना मदद देने को भेजी गई। मालवा के जागीरदार और सिपाही भी तैनात किए गए। अब अकेला चंपतराय चारों ओर शत्रुओं से घिर गया। वीर बुंदेला जगह जगह, वन पर्वत नदी नाले और कंदराओं में भागता फिरता था, औरंगज़ेब की हिंदू सेना चारों ओर से उसका पीछा कर रही थी। साथी एक एक करके अलग हो गए। खुशामद और खुदग़र्ज़ी के मारे ज्यादातर बुंदेला सरदार चंपतराय का पीछा करने लगे। चंपत के भाई सज्जनराय का क़िला ले लिया गया। सज्जन ने अपमान से बचने के लिये आत्म-हत्या कर ली। चंपतराय जहां गया, लोगों ने उसको रखने से इनकार किया। तीन दिन और रात के भूखे प्यासे और थके आप अपनी बहन के यहां गए लेकिन वहां भी घूंट भर पानी पीने को नहीं मिला। सहरा के राजा साहब राय धंधेरा ने धोखा देकर चंपत को पकड़वाना चाहा। अक्टूबर सन् १६६१ ई० में चंपत ने देखा कि किसी तरह प्राण नहीं बचेंगे। विवश होकर आपने आत्म-हत्या कर ली। ऐसे वीर की स्त्री भला कब अपना सतीत्व भंग कराने के लिये जीवित रह सकती थी। अस्तु महारानी कालीकुमारी ने भी स्वर्ग में आपका साथ दिया।

चंपतराय के लड़के छत्रशाल भी पिता की तरह वीर थे। जयसिंह के कहने से आप कुछ दिन के लिये मुग़ल सेना में भरती हो गए। वही पल्टन सन् १६६४ ई० में महाराज

शिवाजी से लड़ने गई। शिवराज से मिलकर कोई हिंदू अहिंदू रही नहीं सकता था। हिंदुओं की मर्यादा रखने के लिये आप यवन सेना छोड़कर अलग हो गए। सन् १६७१ ई० से आपने लूट मार करना और मुग़लों को सताना शुरू किया। कई बार कई सेनाएं भेजी गईं लेकिन राजा पराजित नहीं हुआ। औरंगज़ेब के मरने पर बहादुरशाह ने छत्रशाल को राजा स्वीकार करके उसका आदर किया। छत्रशाल ने भी इसके बदले में बादशाह के लिये लोहगढ़ फ़तह कर दिया। सन् १७३२ ई० में फ़र्रुख़ाबाद के सूबेदार मुहम्मदख़ां ने बड़ी लूट पाट मचाई। छत्रशालजी अब ८२ वर्ष के निर्बल वृद्ध हो गए थे। विवश होकर आपने प्रथम बाजीराव पेशवा से मदद मांगी। आपने पत्र में लिखा,

जो गति ग्राह गजेंद्र की, सो गति जानहु आज।
बाजी जात बुंदेल की, राखो बाजी लाज॥"

पेशवा बाजीराव ने सेना भेजकर मुहम्मदख़ां को परास्त किया। कृतज्ञता में छत्रशाल ने अपने राज्य का तीसरा हिस्सा पेशवा को दे दिया। सन् १७३४ ई० में महाराज का देहांत हुआ। छत्रपुर में इनकी समाधि बनी है। लोग अब तक छत्रशाल का गुण गाते हैं और जब तक हिंदू जाति और हिंदी भाषा रहेगी गावेंगे।

अफ़ग़ान-युद्ध

अभी तक जिन लड़ाइयों का हाल दिया गया है वे हिंदुओं के साथ हुईं। जिस युद्ध का वर्णन अब किया

जायगा वह मुसलमानों के साथ हुआ। आप देख चुके हैं कि औरंगज़ेब कितना सख़्त आदमी था। आप यह भी जानते हैं कि अफ़ग़ान की सरहदी क़ौमें लूट पाट की आदी हैं। सरहद की अफ़रीदी तथा दूसरी जातियां लूट पाट विना कैसे रह सकती थीं! औरंगज़ेब इनकी ज्यादतियां कैसे बरदाश्त कर सकता था! इसीलिये अफ़ग़ानों और मुग़लों की मुठभेड़ हो गई। इनकी लड़ाई तो अकबर के वक़्त से चली आती थी। लुटेरों से आजिज़ आकर मुग़ल सेना भेजी जाती थी, अफ़ग़ान तंग होते थे, इनके घर जलाए जाते थे, फ़सिल काटी और बरबाद की जाती थी। तलवार के ज़ोर से इनकी संख्या कम की जाती थी। जगह जगह सिपाही तैनात किए जाते थे। सब कुछ होते हुए भी मौक़ा पड़ने पर अफ़ग़ान उभड़ जाते थे, मुग़लों को भगा देते थे। जब हर साल इन पर चढ़ाई होने लगी, लाचार होकर इन लोगों ने सुलह की, लेकिन ऐसे लोगों की सुलह कै घड़ी चल सकती थी!

अभी तक तो अफ़ग़ान महज़ लूट पाट करते और मुग़लों के धावे से अपना प्राण बचाते थे। लेकिन सन् १६६७ ई० में उनका हौसला और भी बढ़ गया। यूसुफ़ज़ाई लोगों के एक सरदार का नाम था भग्गू। वह सब अफ़ग़ानी क़ौमों को इकट्ठा करके उनका मुखिया बन गया। ५ हज़ार आदमियों को इकट्ठा करके उसने मुग़लों के पंजाबी सरहद

पर हमला किया। इनके धावे से लोग परेशान हो गए। बादशाह ने इनको ठीक करने का पक्का इरादा कर लिया। बड़ी धूमधाम से चढ़ाई हुई।

बादशाह ने तीन तरफ़ से धावा करने का इरादा किया। अटक का फ़ौजदार क़ामिलख़ां अपनी सेना लेकर भेजा गया। काबुल का सूबेदार १३ हज़ार पल्टन के साथ तैनात किया गया। १० हज़ार चुने हुए सिपाहियों के साथ मुहम्मद अमीनख़ां दरबार से भेजा गया। जब तक और सेनाओं के आने में देरी हुई, क़ामिलख़ां ने हमला कर दिया। दुश्मन ने भी खूब तैयारी करके हारून नदी का घाट रोक के मुक़ाबिला किया। बाद में मदद के लिये और सेनाएं भी पहुँच गईं। मुहम्मद अमीनख़ां सब का कमांडर बनाया गया। यूसुफ़ज़ाई लोग परास्त हुए। शमशीर के हाथ में कमांड देकर अमीनख़ां दरबार में लौट आया। सन् १६७२ ई० तक सरहद के किसी फ़िरक़े ने दंगा फ़साद नहीं किया।

सन् १६७२ ई० में अफ़रीदियों ने अपने सरदार अकमल-ख़ां की मातहती में उपद्रव किया। अकमल बड़ा बहादुर जेनरल था। उसने अपने को बादशाह मशहूर कर दिया और वह अपने नाम का सिक्का ढालने लगा। मुग़लों का मुक़ाबिला करने के लिये उसने पठानों को इकट्ठा करके ख़ैबर पास का रास्ता बंद कर दिया।

मुहम्मद अमीनखां बड़ी भारी सेना लेकर पठानों को सज़ा देने के लिये रवाना हुआ। जमरूद जाने पर उसको मालूम हुआ कि पठानों ने रास्ता बंद कर दिया है। लोगों ने उसको इस खतरे से आगाह किया और आगे बढ़ने से रोका लेकिन मगरूर अमीनखां कब किसी का कहा मान सकता था! अपने घमंड के नशे में चूर वह तारीख २१ अप्रैल को अली मसजिद में पहुँचा। रात में उतरकर अफ़रीदियों ने चश्मे में बांध बांधकर लश्कर में पानी आना रोक दिया। दूसरे दिन पल्टन की पल्टन प्यासों मरने लगी। दुश्मन ने हमला करके मुग़ल सेना को तबाह कर दिया। मुहम्मद अमीन कुछ अफ़सरों के साथ किसी तरह जान लेकर पेशावर भागा। ४० हज़ार मुग़ल काटे गए। २० हज़ार के क़रीब मर्द और औरतें ग़ुलाम बनाकर बेचे गए। करोड़ों रुपए के माल लुट गए। खां साहेब की मा, बीबी और लड़की भी क़ैद की गई थीं, जो बाद में बड़ी मुश्किल से किसी तरह छुड़ाई गईं। इनकी बीबी को इतनी ग्लानि हुई कि उसने घर वापस जाना ना-मुनासिब समझा और एक फ़क़ीर की क़ब्र के पास रहकर उसने अपनी ज़िंदगी काटी। बरबादी बड़ी भारी हुई। ऐसी परेशानी इसके पहले एक दफ़ा अकबर के वक़्त में उठानी पड़ी थी जब वीर अफ़ग़ानों ने राजा बीरबल की पल्टन को काटकर टुकड़े टुकड़े कर दिया था। इस जीत ने अफ़रीदी सरदार

बूढ़ा शेर बहादुर खुशहाल अब भी डँटा रहा, स्वतंत्रता का झंडा फहराता रहा। वह अकेला पठानों की जातीयता का झंडा फहरा रहा था। लेकिन जिस जाति में कादरता का प्रवेश हो गया, स्वार्थ ने जिसकी बुद्धि पर परदा डाल दिया, वैमनस्य ने जिसको पागल बना दिया है, उसमें एक आदमी क्या कर सकता था और कब तक वह अकेला रहकर स्वतंत्र रह सकता था। खुशहाल के लड़के ने उसको गिरिफ़्तार करवा दिया।

अफ़ग़ान युद्ध में बादशाह का बहुत धन ख़र्च हुआ, लेकिन इससे भी बढ़कर उसकी यह हानि हुई कि अफ़ग़ानों की हमदर्दी उसकी ओर से जाती रही। यही कारण था कि राजपूत युद्ध में अफ़ग़ानों से मदद नहीं मिल सकी थी। बादशाह के लिये तीसरी ख़राब बात यह हुई कि अच्छे अच्छे अफ़सर दक्खिन से अफ़ग़ानिस्तान में भेज दिए गए।

दूसरा अध्याय।

औरंगज़ेब की धार्मिक कट्टरता।

खलक का एक ही खुदा है और उसकी तरफ़ से एक ही रसूल है। उस पैग़ंबर के बतलाए रास्ते पर न चलना, उस ख़ालिक और मालिक अल्लाहताला के हुक्म से गुरेज़ करना है। जो खुदा और रसूल की नसीहतों का क़ायल नहीं वह काफ़िर है। ऐसे बेईमान के लिये बिहतर है कि वह जहां तक जल्द हो सके अपनी बद-आमाली का नतीजा भुगतते हुए इस दुनिया से कूच करे। इसी वजह से हर मुसलमान का फ़र्ज़ है कि खुदा के हुक्म यानी इसलाम के फैलाने के लिये काफ़िर को मुनासिब सज़ा दे। जब ग़रीब से ग़रीब मुसलमान के लिये काफ़िर का मारना और सताना फ़र्ज़, मंसबी, लाज़िमी और मज़हबी है, तो मुसलमान बादशाहों के लिये इस फ़र्ज़ की जवाबदेही कितनी ज्यादा हो जाती है! घड़े में पानी रखकर किसी को प्यासे मरने देना जितना बड़ा गुनाह है, हाथ में डंडा लेकर विषैले सांप को खेलने देना जितना बड़ा पाप है, बादशाह होकर, ताक़त और तलवार होने पर भी करोड़ों काफ़िरों को जीते जागते छोड़ देना उससे कहीं बढ़कर कुकर्म है। मारने के पहले काफ़िर को मुसलमान होने के लिये एक मौक़ा ज़रूर देना चाहिए। लेकिन अगर

उसपर भी वह नहीं सँभलता है, इसलाम की रौशनी देखकर भी कुफ्र की तारीकी में रहना चाहता है, उसकी हालत क़ाबिल रहम नहीं है। जहां तक जल्द हो ऐसे लोगों का काम तमाम होना चाहिए। काफ़िरों में भी अहल हिनूद की हालत सब से अबतर है जो बजाय एक परवरदिगार के करोड़ों झूठे देवी देवताओं को पूजते हैं, इतना ही नहीं बल्कि पत्थर और मिट्टी को पूजकर खुदा की हजो करके अपनी ज़िंदगी मिट्टी में मिलाते हैं, नदी नालों, दरख़्त और पहाड़ों को सिजदा करते हैं, घंटे और शंख बजाकर अपनी बेवकूफ़ी को दुनिया में मुश्तहिर करके मुसलमानों को भी गुमराह करने की कोशिश करते हैं। हिंदू इतने नालायक़ हैं कि अपना नफ़ा नुक़सान नहीं समझते हैं। उनकी बिहतरी इस बात में थी कि वे जल्द इसलाम को क़बूलकर अपना दीन और दुनिया दुरुस्त करके अपने मंदिर तोड़कर उनकी जगह मसजिद बनवाते। अफ़सोस सद अफ़सोस कि बजाय ऐसा करने के इसलाम से गुरेज़ करते हैं, पुराने मंदिरों का गिरवाना तो अलग रहा और नए मंदिर बनवाते जाते हैं। ऐसे नालायक़ों के लिये खुद मुसलमानों का फ़र्ज़ है कि इनके मंदिरों को तोड़ दें, इनके बुतों को पैरों के नीचे कुचलें, इनको जानी और माली नुक़सान पहुँचावें, इनको ज़बरदस्ती मुसलमान बनावें, तंग करें और मौक़ा पड़ने पर जो कुछ जी में आवे करें। ऐसी कोशिशों से क़तई उम्मीद है कि अगर खुदा और रसूल की

मिहरबानी हुई काफ़िर एक एक करके दुनिया से नेस्तनाबूद हो जायँगे, इसलाम का जलवा और ईमान की रोशनी दुनिया में चमकेगी। खुदा करेगा तो एक दिन आवेगा कि सारी दुनिया हज़रत रसूल की पैरो होगी, और कुफ़्र मिटेगा।

बिहिश्त पाने के लिये मुसलमान को रोज़ा नमाज़ की उतनी ज़रूरत नहीं है। काफ़िर के मार डालने से उसकी आक़बत दुरुस्त हो जाती है। यह पुरानी बात नहीं है जिनके हाथ में ताक़त है, उनमें से कितने ही अब भी ऐसा कर डालने का साहस करते हैं। इस क्रूरता की सब से नई मिसाल मिसिर देश में हुई है। एक मुसलमान ने बूट्रसपाशा को बिला क़सूर क़त्ल कर डाला था। पाशा का इतना ही क़सूर था कि वह क्रिश्चियन था। क़त्ल का जुर्म शहादत से साबित हो गया था लेकिन प्रधान क़ाज़ी ने फ़ैसला दिया कि काफ़िर के मार डालने में इसलाम के मुताबिक़ कोई जुर्म नहीं है। एक सभ्य देश के सब से बड़े जज के न्याय का यह उदाहरण है सो भी ऐसी हालत में जब ब्रिटिश गवर्मेंट की धार्मिक निष्पक्षता का नमूना उस देश के सामने मौजूद है।

इसलाम की इसी आज्ञा के पालन में हिंदुस्तान पर पहला हमला करनेवाले मुहम्मद क़ासिम ने मंदिर तोड़ा। तैमूर ने जब हिंदुस्तान पर हमला किया, उसका खास मतलब था मंदिरों को गिरवाना, मूर्तियों को तोड़ना, और खुदा के

सामने ग़ाज़ी और मुजाहिद होना। हिंदुस्तान के मुसलमान बादशाहों से जहाँ तक बन पड़ा उन्होंने हिंदुओं पर ज़ुल्म किया। अकबर के से शांतिप्रिय बादशाह का भी उसूल था कि चाहे हिंदू जिस तरफ़ मरे, इसलाम का फ़ायदा होगा "हर तर्फ़ शव्वाद कुश्ता सुदी इसलाम"। जहांगीर और शाहजहां ने भी मंदिर और मूर्ति तोड़े थे।

जब मामूली और मुलायम बादशाहों ने इस दरजे तक इस मज़हबी हुक्म की तामील की थी, औरंगज़ेब के से कट्टर मुसलमान को और कितना ज़ुल्म नालायक़, नाचीज़, बदबख़्त और बेईमान हिंदुओं पर करना चाहिए था। औरंगज़ेब की दिली-मुराद थी कि सारी दुनिया में इसलाम की तेग़ चमके, मुसलमानों की तादाद बढ़े, काफ़िर नेस्तनाबूद और ज़लील हों।

इस इरादे को पूरा करने के लिये उसने दुनिया की दूसरी मुसलमान सल्तनतों से दोस्ती पैदा की, क्योंकि दस आदमी मिलकर जो काम कर सकते हैं उसे एक थोड़े ही कर सकता है। मुसलमानों के लिये मक्का शरीफ़ से बढ़कर पाक जगह इस दुनिया में नहीं। इसलाम की बुनियाद डालनेवाले हज़रत मुहम्मद के चरणों से जो स्थान पवित्र हुआ है, संसार भर के मुसलमान उसी ओर हर रोज़ पांच दफ़े सिजदा और नमाज़ करते हैं। इसीलिये मुसलमानी संसार में मक्का के शरीफ़ का पद बड़ा आदरणीय है। गोत्रघात का पाप मिटाने के लिये औरंगज़ेब ने शरीफ़ महाराज को प्रसन्न

करना आवश्यक समझा। ६ लाख ६० हज़ार रुपए लेकर सैयद मीर इब्राहीम मक्के भेजा गया। हुक्म हुआ कि यह धन मक्का और मदीना के फ़क़ीरों और सैयदों को बांट दिया जाय। पहले तो शरीफ़ ने रुपए लेने से इनकार किया क्योंकि शाहजहां की ज़िंदगी में बादशाहत करने का औरंगज़ेब को कोई हक़ नहीं था।

रुपया वापस आने में औरंगज़ेब की बड़ी बेइज्ज़ती होती। इसलिये बड़ी कोशिश की गई कि वह क़बूल हो जाय। बादशाही दूत पांच बरस तक इसी फेर में पड़कर हज करता रहा। अंत में शरीफ़ ने भेट स्वीकार की। सैयद इब्राहीम ने सन् १६६१ ई० में मक्के शरीफ़ से बिहिश्त का रास्ता लिया। हाजी अहमद सैयद उसकी जगह पर मिशन का सरदार होकर सन् १६६५ ई० में काम पूरा करके दिल्ली वापस आया। सैयद यहिया शरीफ़ की तरफ़ से ख़त और तुहफ़े लेकर साथ में दरबार में आया। १३ हज़ार रुपए उसको विदाई में मिले। तब से हर साल शरीफ़ के दूत आते और भेंट ले जाते थे। औरंगज़ेब का मतलब था कि रुपया फ़क़ीरों को बांटा जाय लेकिन शरीफ़ साहब उसको ख़ुद हज़म कर जाते थे। अंत में लाचार होकर बादशाह ने उनको रुपया देना बंद कर दिया। सूरत के अरबी व्यापारियों की मारफ़त रुपया मक्के के फ़क़ीरों में बांट दिया जाता था।

औरंगज़ेब के बादशाह होने पर शाह ईरान ने उसको मुबारकबाद देने के लिये अपना दूत भेजा। औरंगज़ेब ने दूत की बड़ी खातिर की। दोनों बादशाह चाहते थे कि आपस में दोस्ती रहे लेकिन बुरा हो मज़हबी तअस्सुब का जिसने ऐसा नहीं होने दिया। वजह यह थी कि शाह ईरान शीया मज़हब का महाफ़िज़ था लेकिन औरंगज़ेब शीयों को नफ़रत की नज़र से देखता था। नतीजा यह हुआ कि जहां कोशिश मेल करने की की गई थी, वहां दोनों बादशाहों में और दुश्मनी बढ़ गई। मरते दम तक औरंगज़ेब शीयों से नफ़रत करता था। वह अक्सर कहा करता था "ईरानी ग़ुलीं बियाबानी"। शीयों को वह "बातिल मज़हबान" कहा करता था।

बलख और बुखारे से पक्की दोस्ती हो गई। काशगर के भागे हुए बादशाह की अच्छी खातिर की गई। टर्की के बादशाह ने औरंगज़ेब के पास खत भेजा था जिसके जवाब में बादशाह ने बड़े आदर की चिट्ठी लिखी। इस चिट्ठी में एक बात नोट करने की है। गोकि टर्की के बादशाह के नाम के साथ बहुत से खिताब जोड़े गए थे लेकिन वह खलीफ़ा नहीं कहा गया था। इससे साफ़ मालूम होता है कि सुल्तान टर्की न तो कभी मुसलमानी मज़हब के खलीफ़ा माने गए और न ऐसा होना चाहिए। अपने को दुनिया के मुसलमानों का सरपरस्त मानना टर्की का मनगढ़ंत

हौसला है। ऐसी दशा में अगर हिंदुस्तानी मुसलमान टर्की के फेर में पड़े तो उनकी सख़्त ग़लती है। उनको समझ लेना चाहिए कि अब हिंदुस्तान ही उनका वतन और अँगरेज़ी सरकार उनके लिये एकमात्र खलीफ़ा है। जहां शीया और सुन्नी दोनों को बराबर मज़हबी आज़ादियां हैं, जिसकी ज़ेरसाया में हम चैन से सोते और हर तरह की तरक्क़ी कर रहे हैं, उसको छोड़कर ख़्वाब में भी और किसी का ख़्याल करना मुसलमानों के लिये खतरनाक और दुनिया के आलिमों की राय में सब से बढ़कर कुफ़्र है।

औरंगज़ेब दूसरे मुसलमान राज्यों से मेल मिलाप ज़रूर करना चाहता था लेकिन इससे यह मतलब नहीं कि वह दूसरों का भरोसा करता था। उसका सारा जीवन स्वावलंबन का साकार स्वरूप है। अपनी भुजाओं से उसने सिंहासन प्राप्त किया और उन्हीं से वह उसकी रक्षा करता था। अपने ही पराक्रम से उसने मुसलमानी धर्म फैलाने का काम उठाया। औरंगज़ेब लड़कपन ही से कट्टर मुसलमान था। सिंहासन पर बैठने के पहले भी उसने अपनी कट्टरता का परिचय दिया था।

औरंगाबाद के नज़दीक सतारा में पहाड़ी पर एक मंदिर बना हुआ था जिसको 'खुदा के फ़ज़ल' से शाहज़ादा औरंगज़ेब ने तुड़वा दिया। शाहज़ादा ने अहमदाबाद और गुजरात के दूसरे परगनों में बहुत से मंदिर गिरवाए थे। सीतादास

गया है कि आदमी लड़कपन की ना-तजरबेकारी और जवानी की उमंग में बहुत कुछ गलती कर जाता है लेकिन वृद्ध होने पर वह उनको सुधारता है, अपनी भूल पर पश्चात्ताप करता है। औरंगज़ेब इन तीनों तरह के आदमियों से निराले ढंग का था। आपने देखा है कि बादशाह होने के पहले उसने मंदिर को तुड़वाया और उसमें गोवध कराया। बादशाह होने पर मंदिर तोड़ने की आज्ञा देश भर में जारी हुई। ८० वर्ष से ऊपर की अवस्था में भी उसका तअस्सुब कौड़ी भर भी कम नहीं हुआ था। उस बूढ़ी उम्र में उसने हुक्म जारी किया कि सोमनाथ की पूजा कहीं फिर जारी न हो जाय। उसी उम्र में उसने एक जेनरल को दखिखन के एक मंदिर तोड़ने के लिये तैनात किया। देवमंदिरों को गिराकर, उनमें गोवध करके, मूर्तियों को तोड़कर, मुसलमानों के क़दम शरीफ़ से उनको कुचलवा कुचलवाकर किस तरह हिंदुओं का दिल दुखाया गया, आपने देख लिया। लेकिन औरंगज़ेब के ज़ुल्म और ज्यादतियों का यहीं अंत नहीं हुआ। औरंगज़ेब ने समझा होगा कि शायद पत्थर के बुतों की चोट हिंदुओं के दिलों पर असर न करे इसलिये खुद उनपर अत्याचार होने लगा।

क़ुरान की आज्ञा है कि जो मुसलमान नहीं हैं उनसे उस वक़्त तक लड़ाई की जाय जब तक वे आजिज़ी और ज़िल्लत के साथ अपने हाथ से काफ़िर होने का टैक्स अदा न करें।

इस टैक्स का नाम जज़िया है और टैक्स देनेवाले को ज़िम्मी कहकर पुकारते हैं। पहले पहल खुद मुहम्मद साहब ने यह टैक्स लगाया। हिंदुस्तान में पहले पहल मुहम्मद क़ासिम ने ब्राह्मण छोड़कर और हिंदुओं पर जज़िया लगाया। फ़ीरोज़ शाह तुग़लक़ ने ब्राह्मणों के साथ ख़ास रिआयत करना मुनासिब नहीं समझा। शाहंशाह अकबर ने सन् १५७९ ई० में जज़िया उठा दिया। ठीक १०० वर्ष बाद औरंगज़ेब ने इसको जारी करके अपने कलंकित नाम को और भी कलंकित किया। कई मुसलमान विद्वान् कई तरह से जज़िया का समर्थन करते हैं और उससे कुछ दूसरा ही मतलब निकालते हैं। लेकिन दरबार की तवारीख़ से साफ़ मालूम होता है कि इस निंदनीय कर का मुख्य प्रयोजन मुसलमानी धर्म का फैलाना है। जो शुद्ध विश्वास और श्रद्धा से एक मत को छोड़कर दूसरे मत में प्रवेश करता है, उसको वहां जाने से कोई नहीं रोक सकता है और न रोकना चाहिए। लेकिन तलवार दिखाकर या रुपए का लालच देकर धर्म छुड़ानेवाले और उनके रोब और लोभ में फँसनेवाले दोनों नीच हैं। तारीख़ २ अप्रैल सन् १६७९ ई० में औरंगज़ेब ने ज़जिया जारी करने का हुक्म दिया। औरंगज़ेब को जानते हुए भी लोग इस नई आज्ञा को सुनकर घबरा गए।

दिल्ली और उसके नज़दीक के कई सौ हिंदू इकट्ठे हुए। उन लोगों ने सुबह की सलाम के वक़्त गिड़गिड़ाकर जज़िया

नहीं होते हैं। कमल का पत्ता जल में रहकर भी नहीं भीगता है। जब संसार के नाते रिश्ते थोड़ी देर के तमाशे हैं और जब जीव मरता नहीं केवल पुराने कपड़े उतारकर नए धारण कर लेता है, फिर शोक किस बात का, किसके मरने पर ग़म क्यों मनाया जाय, तुच्छ शरीर से निकलकर संसार के विराट् रूप में प्रवेश करने की खुदाई को जुदाई क्यों माना जाय ! इसीलिये संत लोग परिवार में रहते हुए भी सदा उसको त्यागने के लिये सन्नद्ध रहते हैं, वियोग होने पर वे अपने योग के पंखों पर ज्ञान-गगन में मँडराने लगते हैं। चिड़िया टहनी पर बैठती ज़रूर है लेकिन टहनी कट जाने पर वह उसके साथ ज़मीन पर नहीं गिरती है, ऊपर आकाश-मंडल में उड़ने लगती है। साधू लोग धन दौलत की भी परवा नहीं करते हैं। जब दुनिया ही फ़ानी है तो उसके मालटाल का क्या ठिकाना है। फिर जो जगत् भर के लोगों को अपना स्वरूप मानता है वह संसार के सर्वस्व को अपना मानते हुए अपनी शान में मस्त है। बादशाह होने की वजह से आप ज़रूर बड़े कहे जायँगे लेकिन आपसे कहीं बढ़कर वह है जिसने आपकी तरह असंख्य बादशाहों की सल्तनत दुनिया को माफ़ी बख़्श दी है। अमेरिका के प्रेसीडेंट ने महात्मा रामतीर्थ महाराज से कुछ मांगने के लिये कहा। राम शाहंशाह ने हँसते हुए कहा—

"बादशाह दुनिया के हैं मुहरे मेरे शतरंज के।

"दिल्लगी की चाल हैं सब शर्त सुलहो जंग के॥"

ऐसे देवताओं के लिये मौत भी एक मज़ाक़ का सामान है। भीष्म पितामह ने शरशय्या पर धर्मोपदेश दिए, हज़रत मसीह ने सूली पर भी अपने प्रतिवादियों के लिये प्रार्थना की, महर्षि सुक़रात ने आनंद से विष का प्याला मुँह में लगाया। रामतीर्थ जी महाराज ने सच्चे हिंदू की तरह भक्ति-भाव से अपना शरीर गंगा मैया की भेंट कर दिया।

"गंगा मैं तेरी बलि बलि जाऊं।

हाड़ मांस तुझे अर्पण कर दूं यही फूल बताशा लाऊं
रमण करूँ मैं शतधारा में न तो नाम न राम कहाऊं"

जैसा कहा जा चुका है वेदांती और सूफ़ी में महज़ नाम और रूप का फ़र्क़ है। सूफ़ी ख़ुदा की याद में मस्त रहता है। बाग़ में, गुल में, बुलबुल और सरो में, कामिनी के चांद से मुखड़े में, मस्ताने तानों में जहां कहीं वह देखता है यार की सूरत, मोहन की माधुरी मूरत नज़र आती है। जब तक मंज़िले मक़सूद नहीं पहुँचे हज़ार झगड़े हैं, रास्ते की दिक़्क़तें और लाख उधेड़ बुन हैं लेकिन जब जो जिसका था उससे मिलकर एक हो गया फिर चिंता किस बात की, योग कैसा, भोग कैसा, रोज़े और नमाज़ कैसे।

"देखते ही यार के शिकवे सारे भूल गए।
बस गूंगे बनकर बैठ गए कलमा कलाम भूल गए॥"

प्यारे प्रीतम के प्रेम की लहर चारों तरफ़ लहरा रही है, देखकर आंखें सहम सी गई हैं।

"दरियाय इश्क़ वह रहा लहरों से बे-शुमार"

सरमद नाम का एक मशहूर सूफ़ी था। दारा इसको मानता था इसलिये यह भी औरंगज़ेब का क्रोधभाजन हुआ। औरंगज़ेब की आज्ञा से मक्कार मुसलमानों की एक कमेटी सरमद का न्याय करने को बैठी। चार्ज लगाया गया कि वह नंगा रहता है। अगर असल में औरंगज़ेब का यही मतलब था तो नागे वैरागे पहले क़त्ल होने चाहिए थे लेकिन ऐसा नहीं हुआ। सरमद का बड़ा भारी और मुख्य अपराध तो यह था कि वह दारा का मित्र था। दारा के मरने पर भी औरंगज़ेब डरता था कि वही सरमद अपनी क़ूवत से कुछ बला न गिराए। औरंगज़ेब को पता नहीं था कि संत लोगों के लिये न कोई मित्र है और न कोई शत्रु और न संसार को तृण समान जाननेवाले महात्मा को औरंगज़ेब की सल्तनत और शान की परवाह थी। अधम औरंगज़ेब के अन्यायी न्यायकारियों ने फ़क़ीर को प्राणदंड की आज्ञा दी। लेकिन जो इन लोगों के लिये बड़ी भारी चीज़ थी वह सरमद के लिये महज़ दिल्लगी थी। जो दिन रात प्रीतम के प्रेम में मतवाला रहता था वह कितने दिन तक उसका वियोग सह सकता था।

"कौन सी है वह जुदाई की घड़ी जो उम्र भर

आरज़ूए वस्ल में यह दिल भटकता ही रहा।"

लेकिन—

"जाकर जापर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु संदेहू"

जिसका जिसपर प्रेम होता है वह अवश्य उससे मिलता है

"पा गया वस चेहरए मक़सूद को लैली के घह।
जो हुआ है मिस्ल मजनू बुलबुले गुलज़ारे इश्क़॥"

मौत की आज्ञा फ़क़ीर को सुनाई गई। उसके आनंद का ठिकाना नहीं। इतने दिन अकेले रहनेवाले, जुदाई में तपनेवाले सरमद का अब व्याह होगा। व्याह होगा ऐसे पुरुष से जिससे बढ़कर संसार में या कहीं भी न कोई हुआ और न कोई होगा। वह समझता था—

"भूलो योवन केर मद अरी बावरी वाम।
यह नेहर दिन दोय को अंत कंत से काम॥"

मंडप रूपी सूली तैयार की गई, वहीं सरमद का उसके प्यारे का मिलन होगा। पल पल युग के समान बीत रहा है, अपने अवगुणों का ध्यान करके पैर आगे नहीं पड़ता है, कलेजा दहल रहा है, आनंद, भय और लज्जा से रोमांच हो आए हैं, प्रीतम के दिव्य स्वरूप का ध्यान करके आँखें झप जाती हैं। देखते देखते घड़ी आ गई, ओफ़ कैसा दिव्य स्वरूप है, क्या बांकी झांकी है,

"तेरी सूरत से नहीं मिलती किसी की सूरत,
हम जहाँ में तेरी तसवीर लिए फिरते हैं।"

देखते देखते विवाह की घड़ी आ गई। अब प्रीतम सरमद के सर में सिंदूर देंगे, उसके सर में लालिमा की रेखा दौड़ेगी। ऐसे बड़े का ब्याह फिर चुटकी से ज़रा सा सिंदूर थोड़े ही दिया जायगा। प्रेम में भीगे हुए, मस्ती में चूर प्रेमियों की शादी! सर्वांग लाल करना होगा, खड्ग से शृंगार किया जायगा, सरमद माथा खोले, सर नीचा किए, संकोच से सिकुड़ा हुआ खड़ा है, प्यारे ने आकर हाथ से ठुड्डी पकड़ मुँह ऊपर उठा दिया, आंखें मिल गईं, अंतर न रहा, बिछुड़े हुए मिलकर एक हो गए, जो तुम वही हम, और जो हम वही तुम, जब ऐसी बात है फिर हम और तुम का भेद कहां!

"दरस बिनु दूखन लागे नैन।
जब से तुम बिछुरे मेरे प्रभु जी, कबहुँ न पायो चैन"

"हमरी उमिरिया होरी, खेलन की,
पिय मोसे मिलि के बिछुरि गयो हो।
पिय हमरे हम पिय की पियारी,
पिय बिच अंतर परि गयो हो॥
पिया मिलैं तब जियौं मोरी सजनी,
पिय बिन जियरा निकरि गयो हो।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी,
बीच डगर पिय मिलि गयो हो॥
धरमदास बिरहिन पिय पायें,

चरन कमल चित गहि रहो हो।"

अब सूली पर चढ़ा सरमद और सामने उसका मनचोर माखनचोर हरी,

"यार को हमने जा बजा देखा,
कहीं ज़ाहिर कहीं छिपा देखा॥"

"गुम कर खुदी को तो तुझे हासिल कमाल हो"

खड्ग ने अपना काम किया, सरमद और उसके प्रीतम एक में मिल गए। प्रेम के गीत गाते हुए सरमद विदा हो गया।

"साक़ी ने अपने हाथ दिया भरके जाम सोज़,
इस ज़िंदगी के फ़ैफ़ का टूटा खुमार आज॥"

महात्मा इस लोक से हँसते हँसते विदा हो गया। उसका नश्वर शरीर नाश हो गया लेकिन अपना अमर नाम वह छोड़ गया, और छोड़ गया हमारे लिये "अनलहक़" का उपदेश। सज्जन लोग दूसरों के लिये कष्ट उठाते हैं, कष्ट को वे कष्ट ही नहीं समझते हैं। हमारे लिये वे मारे काटे जाते हैं आग में जलाए जाते हैं। आग में तपाए न जायँ तो सोने की परीक्षा कैसे हो! खराद पर चढ़े बिना हीरे की जांच कैसे हो!

किया दावा अनलहक़ का हुआ सरदार आलम का।
अगर सूली पै न चढ़ता तो यह मंसूर क्यों होता॥

अत्याचार का मुख्य प्रयोजन होता है लोगों को दबाना लेकिन परिणाम इसका उल्टा होता है। दुनिया के इतिहास

में जहां कहीं आप देखेंगे, अत्याचार से असंतोष का फैलना पाया जाता है। रगड़ लगने से चंदन-वन में भी आग लग जाती है। उसी तरह औरंगज़ेब के जुल्म ने मरी हुई हिंदूजाति को सचेत कर दिया। अकबर की कुटिल नीति के क्लोरोफ़ार्म से जो बेहोश हो गए थे औरंगज़ेब ने झोंके दे देकर उनको होश में ला दिया। साधू सिक्ख प्रबल योधा हो गए, लुटेरे मरहठे फ़तहयाब दुश्मन हो गए, अपनी मर्यादा से गिरे हुए राजपूत फिर कमर कसकर खड़े हो गए। सिक्खों के उत्थान, महरठों के संगठन और राजपूतों के असंतोष का वर्णन आगे चलकर किया जायगा।

इनके अतिरिक्त सतनामियों ने भी अत्याचार सहकर सर उठाए थे। एक मुसलमान सिपाही ने कुछ सतनामी किसानों को सताया जिससे पीड़ित होकर उन लोगों ने उसको दंड दिया। मुसलमानी राज्य में मार खाकर भी मुसलमान सिपाही को मारने का हिंदुओं को क्या हक़ था! सतनामियों को दंड देने के लिये कुछ सिपाही भेजे गए जो परास्त हुए। अंत में एक बड़ी सेना दंड देने के लिये भेजी गई। बहादुर सतनामी सामान के न होते हुए भी बड़ी वीरता से लड़ते रहे। अंत में परास्त हुए और २ हज़ार की संख्या में मारे गए।

तीसरा अध्याय।

सिक्खों का उदय और अस्त।

बनैले पशु उस समय तक वाटिका को हानि पहुँचा सकते हैं, जब तक उसके मालिक या रखवाले को पता न चलजाय। मालूम हो जाने पर वह न सिर्फ़ पशु को बाहर निकालकर अपने बाग़ को बरबाद होने से बचावेगा बल्कि मवेशी को सज़ा भी देगा। इस विश्ववाटिका का माली सर्वांतरयामी है। उसके उपवन और फूलों को आप हानि नहीं पहुँचा सकते हैं क्योंकि वह फ़ौरन आपको पकड़ लेगा, स्वयं प्रकट न होते हुए भी वह आपको उचित दंड देगा। अगर विश्वास न हो तो संसार का इतिहास पढ़िए। जब, जहां कहीं जिस किसी ने धींगा धींगी की उस पर मालिक का कोप हुआ, उस जगदीश्वर का कोई नौकर अन्याय मिटाने के लिये प्रगट हुआ। ऐसा ही एक अवसर उपस्थित हुआ था जब महात्मा नानक जी ने अवतार लिया।

सिकंदर लोदी का हाल आपने इस किताब के पहले खंड में पढ़ा है। उसने कितने बड़े बड़े अत्याचार किए थे यह भी आपने देखा है। उसके अन्यायों से हिंदूजाति जब काँप रही थी, लाहौर के पास तिलौंड़ी गाँव में कालूराम खत्री के घ

उससे अन्याय करा देते थे। गुरु अर्जुनदेव के संबंध में भी ऐसी ही एक घटना हुई। बादशाही सेवा में चंदूशाह नाम का एक आदमी था। वह गुरु जी के पुत्र से अपनी लड़की ब्याहना चाहता था। लेकिन अर्जुनदेव जी कब एक अन्यायी की पुत्री को अपने घर में ला सकते थे! नाराज़ होकर चंदू ने बादशाह को बहकाकर गुरु पर दो लाख रुपए जुर्माना कराए। बाद में इसी नीच ने ज़मानत पर उनको छुड़ा लिया और छुड़ाकर अपने घर लाया। उसने समझा कि अब गुरु जी अहसानों से दबकर और अन्याय से डरकर उसका संबंध स्वीकार कर लेंगे। लेकिन गुरु जी टस से मस न हुए। नराधम चंदू ने बड़ी दुर्दशा से आपका प्राण लिया। सिक्खों के अभ्युदय में गुरु अर्जुनदेव का पहला बलिदान हुआ। गुरु नानक का लगाया हुआ जो कोमल वृक्ष धीरे धीरे बढ़ रहा था, गुरु अर्जुनदेव के रक्त से सिंचित होकर, महात्मा के पाक खून की खाद पाकर एक दम लहलहा उठा। सिक्ख समाज शोक, चिंता और क्रोध से अचानक उठ बैठा। उसने समझ लिया कि धर्म का चक्र निवृत्ति के चलाए नहीं चल सकता है। उसके ठीक ठीक परिचालित करने के लिये, गीता में बतलाए हुए भगवान के प्रवृत्ति मार्ग पर पदार्पण करना पड़ेगा।

पिता के मरने पर हरगोविंद जी ११ वर्ष की अवस्था में छठे गुरु हुए। आपने अपनी कमर में दो तलवारें बाँधीं।

पूछने पर आप जवाब देते थे कि एक तलवार पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये है और दूसरी मुसलमानी राज्य की जड़ काटने के लिये है।

इस नौजवान गुरु ने सिक्खों में नई जान डाल दी। आप न सिर्फ़ बहादुर थे बल्कि दूरंदेश भी थे। जहांगीर बादशाह को खुश करके आपने चंडूशाह से अपने बाप का बैर लिया। लेकिन बाद में जहांगीर ने नाराज़ होकर इनको ग्वालियर के क़िले में क़ैद कर दिया। गुरुजी बारह बरस तक कारागार दंड भोगते रहे। छूटने पर आपने कई बार मुग़लों से युद्ध किया और उनको परास्त किया। सन् १६४५ ई० में आप का देहांत हो गया।

इसके बाद हररायदेव सातवें गुरु हुए। आपने बड़ी शांति से धर्मप्रचार किया। दाराशिकोह आप को बहुत मानता था इसलिये तख़्त पर बैठते ही औरंगज़ेब ने इनको अपनी सभा में बुलाया। आपने खुद न जाकर अपने लड़के रामराय को भेजा। औरंगज़ेब ने रामराय को अपने दरबार में रोक रखा।

गुरु के मरने पर रामराय गद्दी पर बैठना चाहता था। गुरु अपने छोटे लड़के हरकिशन के लिये कह गए थे। झगड़ा बादशाह तक गया। औरंगज़ेब ने समझा कि रामराय दरबार में रहकर बहुत सा भेद जान गया है। उसको सदा के लिये अपने पास रोक रखने से सिक्ख डरते रहेंगे। और

सोचा कि जब तक जातीयता और राष्ट्रीयता के भाव उत्पन्न न हों, कोई काम नहीं हो सकता है, बृहस्पति के समान विद्वान् और बालि के समान बली होकर भी एक मनुष्य कुछ नहीं कर सकता है । ऐसी दशा में कोई कार्य उठाने के पहले हिंदू जाति का संगठन होना चाहिए । वैर भाव और भेद मिटाकर ऐक्य का संचार करना चाहिए । सब को एक भाव, एक भेष और एक भाषा के तिरंगी तागे में गूँथकर माला बनाना पड़ेगा । समग्र हिंदू जाति को एक दूसरे के दुख में दुखी और सुख में सुखी होना पड़ेगा। आर्य मात्र को आर्य आदर्शों, आर्य सभ्यता, आर्य जनता और आर्य जातीयता के लिये उठना, चलना, अड़ना और बलिदान करना पड़ेगा । गुरु गोविंदसिंह ने सोच लिया कि जब तक यह नहीं तब तक सब बातें व्यर्थ हैं ।

इन विचारों से प्रेरित होकर गुरु गोविंदसिंह जी ने हिंदू-जाति से भेदभाव उठा देने का बीड़ा उठाया । आपने कहा कि चारों वर्ण बराबर हैं । आपका मतलब था कि हिंदूजाति के लिये उनमें से प्रत्येक आवश्यक है । उनमें से एक के बिना भी हमारा काम नहीं चल सकता है । पांच भिन्न भिन्न जा-तियों के पांच आदमी आपके पहले सिक्ख (शिष्य) हुए । उनमें फुर्तीलापन लाने के लिये केश, कंघा, कृपाण, कड़ा और कच्छ का प्रचार किया गया । सिक्ख लोगों की संख्या रोज़ रोज़ बढ़ने लगी । उनके लिये हथियार इकट्ठे किए गए ।

पहाड़ी स्थानों में दो तीन क़िले बनवाए गए।

इधर गुरु हिंदूजाति के जगाने की तैयारी कर रहे थे, उधर दूरदर्शी औरंगज़ेब इनका मतलब समझ समझकर इनके परास्त करने का उपाय सोच रहा था। तब तक पहाड़ी राजाओं को जीतकर गोविंदसिंह जी ने अपना बल बहुत बढ़ा लिया। बादशाह ने सोचा कि अब चुप रहने से रोग असाध्य हो जायगा। इसलिये सिक्खों के मुक़ाबिले के लिये शाही सेना भेजी गई। कई बार सिक्खों की जीत हुई। लेकिन कहां विशाल मुग़ल सेना और कहां मुट्ठी भर सिक्ख! अंत में पराजित होना पड़ा। गुरु जी के दुलारे चारों लड़के बड़ी निर्दयता से मारे गए। उन्होंने प्राण देना स्वीकार किया लेकिन धर्म छोड़ने पर वे राज़ी नहीं हुए।

इतना होने पर भी गुरु और सिक्ख बड़ी बहादुरी से मुसलमानी सेना से समय समय पर लड़ते रहे। औरंगज़ेब ने कपट करके गुरु जी को दरबार में बुलवाया। लोगों ने महाराज को जाने से रोका। लेकिन वह ज़बरदस्त और पवित्र आत्मा कब भयभीत होनेवाली थी। आप औरंगज़ेब से मिलने के लिये चले लेकिन अभी आप रास्ते ही में थे कि उस अन्यायी बादशाह का देहांत हो गया। उसके कमज़ोर पुत्रों के समय में बल बढ़ाने का बड़ा अच्छा मौक़ा था। लेकिन उसके एक ही वर्ष बाद गुरु साहब का भी देहांत हो गया।

लेकिन बहादुर सिक्ख न तो घबराए और न हताश हुए। सिक्ख गुरु और धर्मप्रचारक अपना काम करके इस लोक से उठ गए थे लेकिन उनके उपदेश सिक्ख हृदयों में अंकुरित हो गए थे। आगे चलकर इन लोगों ने मिसिल नाम के छोटे छोटे गिरोह बना लिए। अभी तक सिक्खों ने जो संस्थाएं खोली थीं सब धर्म की आड़ में खुली थीं। लेकिन धर्म के नाम पर नहीं खुली थीं। इन्हीं में सुकरचकिया नाम की मिसिल से संबंध रखनेवाले परिवार में महाराज रणजीतसिंह ने जन्म ग्रहण किया था। महाराज के जीवनवृत्तांत देने का यह उपयुक्त स्थान नहीं है। हम जानते हैं कि इनमें न तो राणा प्रताप का स्वजातिप्रेम था और न महाराज शिवाजी की स्वधर्मभक्ति थी। लेकिन आप बड़े बहादुर सैनिक और चतुर शासक थे। आप जिस तरह अपना राज्यप्रबंध कर रहे थे, अगर आपके बाद भी वैसा ही हुआ होता तो सिक्ख-जाति का इतना भीषण पतन न हुआ होता।

सिक्खराज्य के पतन के दो मुख्य कारण हैं, एक तो आपस की फूट और दूसरा अँगरेज़ों से लड़ना। अनेक पराजय और दुर्घटनाओं के बाद रणजीतसिंह के परिवार के अंतिम राजपुरुष, उनके आत्मज दलीपसिंह राज्यच्युत होकर विलायत भेजे गए। इसके लिये शोक है लेकिन उतना शोक नहीं है क्योंकि राज्यलक्ष्मी बलवान् के पास सदा दौड़कर चली जाती है। सब से बढ़ कर शोक इस बात का है कि दलीप-

सिंह ने ईसाई हो कर प्राण छोड़ा था । हम मानते हैं कि अगर दलीपसिंह को अपने धर्म के जानने का काफ़ी मौक़ा मिलता तो वे कभी ईसाई न होते। लेकिन किसी भी हालत में गुरु गोविंदसिंह के अनुयायी महाराज रणजीतसिंह के पुत्र का ईसाई होना हिंदू जाति के लिये उतनाही लज्जा-जनक है जितना राजपूत बालाओं का मुसलमानों से विवाह होना था। जहां गुरु गोविंदसिंह के वीर पुत्रों ने प्राणदान कर धर्म की रक्षा की, उसी समाज का होकर दलीपसिंह ने इतनी आसानी से अपना धर्म त्याग कर दिया ! शोक !

चौथा अध्याय।

राजपूत असंतोष।

आप देख चुके हैं कि राजपूत लोग कितने गिर गए थे। अपनी बेटी बहन देकर जो मुसलमानों का साला और ससुर हो गया था उसके लिये अब और कौनसी दुर्गति बाक़ी थी। लेकिन ज़ुल्म और बरदाश्त दोनों की कोई हद होती है। औरंगज़ेब के अत्याचारों ने निर्जीव और पतित राजपूत आत्माओं को भी जगा दिया। चंदन शीतल होता है लेकिन रगड़ लगने से उसमें से भी आग निकल पड़ती है।

आप देख चुके हैं कि किस तरह जसवंतसिंह ने स्वजाति और सहधर्मियों का रक्त बहाकर मुग़लों का साथ दिया, कई दफ़े उसने औरंगज़ेब के लिये धोखादेही की। आप जानते थे कि शायद इन कामों से औरंगज़ेब ख़ुश होगा, लेकिन ऐसा कब हो सकता था। जिसने अपने बाप और सगे भाइयों का विश्वास नहीं किया वह कब एक जातिद्रोही, धोखेबाज़ काफ़िर का एतबार कर सकता था। वह भीतरही भीतर जसवंत से जलता था। औरंगज़ेब की नमकहलाली करते हुए जसवंतसिंह ने सन् १६७८ ई० में प्राण त्याग किया। औरंगज़ेब बहुत दिन से जोधपुर पर नज़र लगाए बैठा

था। जसवंतसिंह के मरते ही उसने हमला कर दिया। बड़े बड़े राजपूत अफ़सर और बहादुर राठौर सिपाही जसवंतसिंह के साथ जमरूद में रह गए थे। जोधपुर परास्त हुआ। मंदिर तोड़े गए और मूर्तियां गाड़ी पर लाद कर दिल्ली लाई गईं। लेकिन जोधपुर के अभाग्य का यहीं अंत नहीं हुआ। बाहरी शत्रु से पराजित होकर भी राठौर आपस में लड़ते रहे।

जसवंतसिंह की दो रानियों के गर्भ था। फरवरी सन् १६७६ ई० में उनके दो पुत्र हुए। इनमें से एक तो थोड़े ही दिन में मरगया। लेकिन दूसरा, अजितसिंह महाराज जसवंतसिंह का वारिस हुआ। राठौर मंत्रियों ने औरंगज़ेब को समझाया और अजित को जोधपुर का राजा बनाने के लिये कहा। जून के महीने में महाराजा का परिवार दिल्ली पहुँचा। एक दफ़ा फिर बादशाह से आरज़ू की गई। बादशाह ने कहा कि अजित शाही महल में रहेगा। मुसलमान होने पर उसको जोधपुर का राज्य दिया जायगा। चील्ह के घोंसले में मांस रखना इतना भयानक नहीं था जितना औरंगज़ेब के हाथ में अजित को सिपुर्द कर देना।

राठौर कब यह प्रस्ताव स्वीकार कर सकते थे! उन्होंने प्रण किया कि जैसे हो तैसे बालक अजित को दुष्ट औरंगज़ेब के हाथ से बचाना चाहिए। वे इस काम के लिये प्राण तक देने को तैयार थे। यह सब होते हुए भी वे बहुत कुछ नहीं

कर सकते अगर उनको दुर्गादास सा नेता न मिला होता। दुर्गादास की देशभक्ति अपूर्व थी। इसमें संदेह नहीं कि महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी ने हिंदूजाति के लिये अपना सर्वस्व अर्पण किया। उनके काम में स्वार्थ की गंध बिलकुल नहीं थी। फिर भी कहनेवाले कह सकते हैं कि इन महापुरुषों ने अगर किसी वक्त कष्ट उठाया तो किसी वक्त राजसिंहासन को भी शोभित किया।

लेकिन वीर सिपाही दुर्गादास के भाग्य में सोलहो आना सेवाकर्म था। हिंदूजाति को स्वतंत्र रखने के लिये भिड़ना, राठौरों का अस्तित्व रखने के लिये असह्य दुख भोगना, अजित के प्राण बचाकर उसको सिंहासन पर बैठाने के लिये लड़ना यही दुर्गादास का जीवन उद्देश्य था, यही उनका परमधर्म था, यही उनके जीवन की अभिलाषा थी! धन्य हो दुर्गादास! हिंदूजाति क्या देकर तुमसे उऋण हो! उसके पास है ही क्या!

बहादुर दुर्गादास में चरित्र बल भी अतुलनीय था। मुगल-बेगमों के रूप, औरंगज़ेब के धन का लोभ और उसके खड्ग का भय दुर्गादास पर अपना प्रभाव नहीं डाल सके। शत्रु औरंगज़ेब की निस्सहाय पोती के धर्म और प्राण की आपने जिस तरह रक्षा की उसको देखकर आश्चर्य होता है। इन्हीं कारणों से एक राठौर चारण ने कहा है "एह माता ऐसा पुत्र जिन, जैसा दुर्गादास"। ऐसे शेर, ऐसी ज़बरदस्त आत्मा के

रहते रहते औरंगज़ेब क्या किसी में भी इतनी शक्ति नहीं थी कि अजित को राठौरों के हाथ से छीन लेता। औरंगज़ेब ने राठौरों से अजित को मांगा। विचार करके जवाब दिया गया कि लड़का अभी छोटा है बड़ा होने पर दरबार में हाज़िर किया जायगा। औरंगज़ेब ने ज़बरदस्ती से काम लेना चाहा। हुक्म हुआ कि, अजित और रानियां गिरिफ्तार करके नूरगढ़ के क़िले में क़ैद हों।

राठौरों ने बड़ी बहादुरी से मुक़ाबिला किया। दुर्गादास महारानियों और अजित को लेकर मारवाड़ की ओर बढ़ा। मुग़ल सेना ने पीछा किया, नौ मील पर जाकर मुठभेड़ हुई। बड़े ज़ोर की लड़ाई हुई। अंत में दुर्गादास ने बड़ी बहादुरी से काम पूरा किया। आबू पहाड़ पर एक साधु के साथ राजकुमार छिपा कर रखे गए। औरंगज़ेब का मनोरथ पूरा नहीं हुआ। लेकिन उस मक्कार बादशाह ने दूसरी चाल चली। उसने एक अहीर के लड़के को अपने ज़नाने में पालकर उसको अजितसिंह के नाम से मशहूर किया। उसने यह भी ज़ाहिर किया कि जिस लड़के को दुर्गादास भगा ले गए वह अजितसिंह नहीं था। इधर यह चाल चलकर औरंगज़ेब ने मारवाड़ पर चढ़ाई की। रमज़ान की वजह से वह खुद अजमेर में रुक गया और अपने लड़के अकबर को उसने पल्टन के साथ भेजा। राठौरों ने मुक़ाबिला किया। पुष्कर के पास युद्ध हुआ जिसमें राजपूत हारे और मारवाड़

ले लिया गया। इस लड़ाई में हारकर राठौरों ने समझ लिया कि खुली लड़ाई में मुग़लों को परास्त करना कठिन है। इस लिये वे छिप छिपकर हमले करने लगे। लेकिन इससे क्या हो सकता था। राठौर हार गए। जोधपुर और दूसरे शहर लूटे गए। मंदिर तोड़े गए, मूर्तियां फोड़ी गईं। इन अत्याचारों से क्रोधित होकर उदयपुर के राना महाराज राजसिंह ने मारवाड़ का साथ दिया। दोनों राज्यों ने मिलकर मुग़लों का मुक़ाबिला किया।

नाराज़ होकर औरंगज़ेब ने मेवाड़ पर हमला किया। चित्तौर ले लिया गया। उदयपुर के पड़ोस में १७३ मंदिर तोड़े गए। चित्तौर के ६३ मंदिर गिराए गए। इस तरह उदयपुर को परास्त करके उसको शाहज़ादा अकबर के अधिकार में छोड़कर औरंगज़ेब अजमेर वापस गया। लेकिन अकबर के पास इतनी सेना नहीं थी कि वह उदयपुर और मारवाड़ की मिली हुई ताक़त को दबा सके। अकबर के पास सिर्फ़ १२ हज़ार सिपाही थे जो कई टोलियों में बांटे गए थे। ज़रूरत पड़ने पर वह एक जगह २ हज़ार से ज्यादा सिपाही नहीं भेज सकता था। राजपूत सेना इसके मुक़ाबिले में कहीं अधिक थी। २५ हज़ार से अधिक राठौर घुड़सवार थे। उदयपुर की पल्टन में भी १२ हज़ार से कम सिपाही नहीं थे। इसके अलावा राजपूतों को एक सुविधा और थी कि वे अपने घर में लड़ रहे थे। जिन जगहों से मुग़ल नावाक़िफ़

थे उनको राजपूत अच्छी तरह जानते थे और इस जानकारी से फ़ायदा उठाते थे।

बादशाह के चले जाने के बाद राजपूतों ने काम करने का अच्छा मौक़ा देखा। उन्होंने लूटपाट करना शुरू किया और मुग़ल सेना की रसद को रोक दिया। नतीजा यह हुआ कि मुग़ल डर गए। सिपाही आगे बढ़ने से डरते थे और अफ़सर मुठभेड़ करने से घबराते थे। कुछ दिन के बाद राजपूतों ने शाहज़ादा अकबर के कैंप पर रात में हमला किया। इस तरह मेवाड़ का सत्यानाश करना तो अलग रहा मुग़लों को अपनी जान बचाना मुश्किल होगया। अकबर की हार से नाराज़ होकर बादशाह ने उसको मारवाड़ में भेज दिया और शाहज़ादा आज़म चित्तौर में तैनात किया गया।

औरंगज़ेब ने इरादा कर लिया कि मेवाड़ पर तीन तरफ़ से हमले किए जायँ। चित्तौर की ओर से शाहज़ादा आज़म, उत्तर से शाहज़ादा मुअज़्ज़म और पश्चिम से शाहज़ादा अकबर के धावे होने के हुक्म हुए। इनमें से पहले दो शाहज़ादे कुछ काम न कर सके। लेकिन अकबर यथासाध्य उद्योग करता रहा। चित्तौर से अपमानित होकर अकबर मारवाड़ की ओर बढ़ा। राजपूत कभी कभी छोटे मोटे धावे करते रहे लेकिन अकबर अपने इरादा से नहीं हटा। शाहज़ादा के साथ तहव्वरख़ां भी तैनात हुआ था। इस अफ़सर ने जी खोलकर शाहज़ादा का साथ नहीं दिया। इससे शंका

हुई कि शायद वह राजपूतों से मिल गया था । ऐसी दशा में आप स्वयं अकवर की कठिनाइयों का अनुमान करसकते हैं । एक ओर कठोर और अन्यायी बाप का डर, दूसरी ओर एक नमकहराम जेनरल का साथ, सब के ऊपर बहादुर राजपूतों का मुक़ाबिला । इन्हीं बातों को सोच विचार कर और चतुर राजनीतिज्ञ दुर्गादास के समझाने में आकर अकबर अपने बाप से बाग़ी होगया । उसने अपने को दिल्ली का बादशाह मशहूर किया । दक्षिण में उसने बग़ावत का झंडा खड़ा किया । राजपूतों ने उसका साथ दिया। बहुत बड़ी आशा थी कि राजपूतों की सहायता से अकबर अपने वृद्ध बाप औरंगज़ेब को तख़्त से उतारकर उसके पापों का उचित दंड देगा । लेकिन औरंगज़ेब की मकारी, राजपूतों की बेवक़ूफ़ी और अकबर के अभाग्य ने ऐसा न होने दिया। औरंगज़ेब ने अकबर के नाम का एक जाली ख़त बनाया, उसके पढ़ने से मालूम होता था कि अकबर अपने पिता की राय से राजपूतों को धोखा देने के लिये उनसे मेल कर रहा है। चिट्ठी इस हिकमत से भेजी गई कि वह दुर्गादास के हाथ में पड़ गई । दुर्गादास में देशभक्ति थी, बहादुरी थी और चरित्र बल था लेकिन औरंगज़ेब की चालों के समझने की शक्ति उसमें बिल्कुल नहीं थी । डरकर राजपूत अकबर को अकेला छोड़कर भाग गए । प्रातःकाल उठकर अकबर ने अपने को निस्सहाय पाया । उसके ३५० घुड़सवारों को छोड़

कर बाक़ी सब लोग चले गए थे। हताश होकर अकबर जान लेकर भागा। उसका क्या परिणाम हुआ यह पहले दिखाया जा चुका है।

अकबर के हट जाने के बाद मेवाड़ को फ़ुर्सत मिल गई। इसी बीच में महाराना की मृत्यु हुई और जयसिंह नये महाराना हुए। बीकानेर के श्यामसिंह के समझाने पर राना ने बादशाह से सुलह कर ली। मेवाड़ को लड़ाई से छुट्टी मिली लेकिन मारवाड़ के भाग्य में अभी शांति नहीं थी। सन् १६८१ ई० से बराबर लड़ाई होती रही। सन् १७०६ ई० में विवश होकर दिल्ली के बादशाह ने अजितसिंह को मारवाड़ का महाराज स्वीकार किया।

शाइस्ताख़ां पूना में शिवाजी के एक पुराने मकान में ठहरा। एक दिन रात में बारात के बहाने से २५ आदमी साथ लेकर भेद बदलकर शिवाजी उस मकान में घुस गए। शाइस्ताख़ां चारपाई पर सो रहा था। शिवाजी की तलवार से उसकी दो उँगलियां कट गई लेकिन वह जान लेकर खिड़की के रास्ते भागा। उसका लड़का जान से मारा गया। मुग़ल सेना कुछ कट गई और कुछ घबराकर जान लेकर भाग गई। शिवाजी विजय दुंदुभी बजाते हुए सिंहगढ़ चले गए। औरंगज़ेब शाइस्ताख़ां से इतना नाराज़ हुआ कि उसने उसको बंगाल रवाना कर दिया। शाहज़ादा मुअज़्ज़िम जसवंतसिंह के साथ दक्षिण भेजा गया। ४ हज़ार आदमियों की सेना लेकर शिवाजी ने सूरत पर हमला किया और ६ रोज़ तक लूट होती रही। इसी बीच में महाराज के पिता शाहजी की मृत्यु हुई। पिता के मरने के बाद आपने स्वतंत्र राजा होने की घोषणा दी और अपनी टकसाल जारी की। इससे औरंगज़ेब और भी नाराज़ हुआ। शिवाजी को ठीक करने के लिये उसने जयसिंह की मातहती में एक सेना भेजी। जयसिंह का विश्वास न करके उसने दूसरी सेना दिलारख़ां की मातहती में भेजी। महाराज शिवाजी में एक अजीब जादू था जो औरों को वश में कर लेता था। आपका जाति-प्रेम देखकर जयसिंह मुग्ध हो गए। उधर तो आपको औरंगज़ेब के नमक का ध्यान था इधर हिंदू

होने के नाते हिंदूजाति के उद्धारकर्ता शिवाजी का ख़याल था। इस धर्मसंकट को मिटाने के लिये आपने चाहा कि औरंगज़ेब और शिवाजी में दोस्ती हो जाय। आपके कहने पर शिवाजी अपने लड़के शंभाजी के साथ बादशाह से मिलने के लिये दिल्ली गए। औरंगज़ेब ने सोचा कि हाथ आए दुश्मन को छोड़ना ठीक नहीं। इसलिये ये लोग हिरासत में ले लिए गए। अगर महाराज में साहस और चतुरता न होती तो वे औरंगज़ेब के कारागार में पड़े सड़ते रहते। आपके जीवन की यही लास्ट नाइट होती। आप खांचों में फ़क़ीरों के लिये खाना भेजा करते थे। एक रोज़ दो खांचों में लड़के के साथ आप निकल गए। कुछ दिन के बाद फ़क़ीरी भेष में आप पूना पहुँच गए। औरंगज़ेब सर धुन और पछताकर रह गया।

दिल्ली से लौटने पर शिवाजी बराबर अपना राज्य बढ़ाते रहे। बीच में औरंगज़ेब से सुलहनामा करके शिवाजी ने बीजापुर और गोलकुंडा से मालगुज़ारी वसूल की। सुलह कर लेने पर भी न तो औरंगज़ेब ने शिवाजी को भुलाया था और न महाराज उसको भूले थे। औरंगज़ेब ने जसवंतसिंह को हुक्म दिया कि वह मित्रता करके शिवाजी को अपने हाथ में करके उसको गिरफ़्तार करले। लेकिन शिवाजी ने उलटी मुग़लसेना में फूट पैदा कर दी। औरंगज़ेब ने चिढ़कर खुल्लमखुल्ला युद्ध की घोषणा दी। महाराज ने रात में

लगता है जिसको आपने जज़िया के संबंध में औरंगज़ेब को लिखा था।

शिवाजी के लड़के शंभाजी में वीरता तो ज़रूर थी लेकिन पिता के और गुण नाममात्र को भी नहीं थे। इनको शराब पीने की आदत पड़ गई थी। जब संगमेश्वर के बाग़ में आप नशे में चूर थे औरंगज़ेब के गोइंदों ने गिरिफ़्तार कर लिया। औरंगज़ेब ने शंभाजी से मुसलमान होने के लिये कहा। शंभा के शरीर में शिवाजी का रक्त था। उसने कड़ककर मुँहतोड़ जवाब दिया। औरंगज़ेब ने गरम लोहे से उसकी आँखें निकलाकर उसकी ज़बान कटवाकर फ़ौरन् मरवा डाला। शंभाजी का लड़का साहू भी गिरिफ़्तार हो गया। वह शाही महल में ग़ुलाम की तरह पाला गया। इस तरह शिवाजी का वंश निर्मूल हो गया। लेकिन महाराज की आत्मा अब भी काम करती थी। महाराज के काम को पेशवाओं ने उठाया। सींधिया, हुलकर इत्यादि दूसरे मरहठों ने भी सहायता की।

मरहठा राज्यों का एक भ्रातृमंडल सा बनगया था जिसको मरहठा कनफ़िडरेसी कहकर पुकारते हैं। इसके संगठन को देखकर विदेशी राजनीतिज्ञ अब भी दाँतों अँगुली चबाते हैं। लेकिन घर की फूट से जब सोने की लंका जल गई तब इस भ्रातृमंडल को नाश होते कितने दिन लगते। महाराष्ट्र जाति में रघोबा नाम का विभीषण पैदा हुआ था जिसने

सब बना बनाया खेल चौपट कर दिया। अंतिम पेशवा के दत्तकपुत्र नाना साहेब ने सन् १८५७ ई० के बलवे में अपने को चाहे किसी भी कारण से हो पाप के गढ़े में गिरा दिया। तब से उसने मुँह भी नहीं दिखलाया और मालूम नहीं कहां चला गया। अब भी मरहठा रियासतें वर्तमान हैं जो अँगरेज़ी गवर्मेंट की मैत्री से लाभ उठाती हुई फूलती फलती हैं। उनमें से कितनी ही कितनी बातों में और नरपतियों के लिये आदर्श हो रही हैं। महाराज सयाजी राव बरौदानरेश ने अपने राज्य में जो सुधार प्रचलित किए हैं उनकी मुक्तकंठ से सब लोग प्रशंसा करते हैं। महाराज ग्वालियर की वीरता उदारता और प्रजावत्सलता सब पर प्रगट है। ईश्वर करे दिन दिन इनकी उन्नति हो, दिन दिन इनके सुशासन से इनकी प्रजाओं का कल्याण हो, ब्रिटिश गवर्मेंट और इनकी मित्रता चिरस्थायिनी हो। दोनों एक दूसरे को लाभ पहुँचावें यही बीस करोड़ भारतीय हिंदू प्रजा की मनोकामना है।

सातवां अध्याय ।

बहादुरशाह ।

१७०७–१७१२ ई०

आपने देखा है कि किस तरह अनेक विरोधिनी शक्तियों ने औरंगज़ेब के अंतिम दिनों को दुखपूर्ण बनाकर उसके राज्य को भीतर ही भीतर चाल डाला था। सब कुछ होते हुए भी उस बूढ़े शेर ने मरते दम तक अपना रोब बहुत कुछ क़ायम रखा। उसके मरते ही मुग़ल राज्य की दीवारें धड़ाधड़ गिरने लगीं। उनका गिरना सब तरह निश्चय था क्योंकि औरंगज़ेब के लड़कों में एक भी न तो शाहंशाह अकबर के समान राजनीतिज्ञ था और न औरंगज़ेब के समान हौसिलेवाला और ज़बरदस्त था। ऐसे लोग सिक्ख धर्म की प्रज्वलित अग्नि के बुझाने में कैसे समर्थ हो सकते थे, राजपूतों की बढ़ती हुई शक्ति को कैसे रोक सकते थे, महाराष्ट्र राष्ट्रीयता के आघातों को कैसे झाड़ सकते थे। एक तो कमज़ोरी, तिस पर भी आपस में मेल नहीं। औरंगज़ेब के मरते देर नहीं हुई कि लड़के आपस में लड़ने लगे। औरंगज़ेब ने अपनी ज़िंदगी में बटवारा कर दिया था। लेकिन उस आज्ञा को कौन मानने लगा था। एक तो वैसे ही राजलोभ बड़ा प्रबल होता है फिर औरंगज़ेब ने अपने

भाइयों से लड़कर पहले ही से अपने पुत्रों के लिये रास्ता दिखा दिया था। पुत्रों ने औरंगज़ेब की बातों पर ध्यान न देकर उसके कामों का अनुकरण किया। आपको मालूम है कि औरंगज़ेब ने मरते वक्त तीन लड़के छोड़े थे जिनके नाम थे मुअज्ज़म, आज़म और कामबख़्श। बाप के मरते ही दूसरे लड़के आज़म ने अपने को हिंदुस्तान का बादशाह मशहूर किया। शाहज़ादा मुअज्ज़म काबुल पर क़ब्ज़ा करके वहां का बादशाह हो गया। लेकिन उसने हिंदुस्तान के तख़्त का हौसला दिल से नहीं निकाला। निकालता कैसे क्योंकि बड़ा बेटा होने की वजह से तख़्त का हक़दार भी तो वही था। जो हो अब मामला सीधे तै होनेवाला नहीं था क्योंकि आज़म भी दिल्ली की सल्तनत के लिये मरने मारने के लिये तुला बैठा था। दोनों तरफ़ से तैयारियां होने लगीं। मुग़ल वृक्ष की सूखी हुई टहनियों को जलाकर ख़ाक करने के लिये दोनों ओर से सैनिक नामधारी असंख्य जवान इकट्ठे हो गए। आगरे के क़रीब मुठभेड़ हो गई। घोर घमसान हुई। दोनों ओर के बहुत से लोग कट गए। अंत में बड़े भाई की जीत हुई। आज़म हारा और मारा गया। उसके दो लड़के लड़ाई में काम आए और तीसरा जो सब से छोटा था क़ैद किया गया। आज़म के जीतने की अधिक संभावना थी लेकिन अपने घमंड के कारण उसका पराजय हुआ। अपने ग़रूर की वजह से उसने अपने बहुत से अफ़-

सरों को नाराज़ कर दिया था। असदखां और उसके लड़के जुलफ़िक़ारखां ने पहले ही से आज़म का साथ छोड़ दिया था। लड़ाई का नतीजा मालूम हो जाने पर ये लोग फ़तहयाब मुअज़्ज़म की तरफ़ हो गए। उसने इन लोगों की बड़ी ख़ातिर की और बड़े ऊँचे दरजों पर इनको मुक़र्रर किया। दुनिया खाने की साथी है। आज़म के दूसरे साथी भी धीरे धीरे मुअज़्ज़म की तरफ़ आ गए। उसने सब लोगों को अच्छी अच्छी नौकरियां दीं। ख़ातिर सबकी की गई। लेकिन सबसे ज्यादा एतबार किया जाता था मुनीमखां का, जो काबुल में मुअज़्ज़म का सबसे बड़ा अफ़सर था। मुनीमखां वज़ीर मुक़र्रर किया गया। वह इस पद के योग्य भी था। क़ाबलियत के साथ साथ वह बादशाह का बड़ा भारी ख़ैरख़्वाह था।

मुअज़्ज़म बहादुरशाह के नाम से दिल्ली के तख़्त पर बैठा। प्रजा औरंगज़ेब के अत्याचारों से घबराई हुई थी। उसने नए शासक का हृदय से स्वागत किया।

आज़म का काम तमाम करके बहादुरशाह कामबख़्श की ओर मुड़ा। घमंडी होते हुए भी कामबख़्श ने आज़म को मातहती क़बूल कर ली थी। जब आज़म को मारकर बहादुरशाह बादशाह हुआ, कामबख़्श ने उसकी एतायत मंजूर नहीं की। बादशाह ने बहुत कुछ ऊँचा नीचा दिखलाया, बहुत कुछ लालच भी दिलाया लेकिन ज़िद्दी कामबख़्श ने एक नहीं माना।

अंत में विवश होकर युद्ध करना पड़ा। हैदराबाद के पास बड़े ज़ोर की लड़ाई हुई। कामबख़्श मारा गया। बहादुरशाह अब एक तरह निर्विघ्न राज्य करने लगा। एक तरह इस वजह से कि अभी राजपूत, मरहठे और सिक्ख बदस्तूर अपना ज़ोर जमाए बैठे थे। शाहज़ादा आज़म ने तख़्त पर बैठते ही साहूजी को क़ैद से रिहा कर दिया था। साहू की ग़ैरहाज़िरी में उसके चचा राजाराम को राज्य दिया गया था। राजाराम के मरने पर उसकी विधवा स्त्री ताराबाई राज का काम करती थी। राज करने के लिये ज़रूर राजाराम तैनात कर दिया गया था लेकिन लोग इसको भूले नहीं थे कि राज्य का असली हक़दार साहू है। इन्हीं विचारों से फ़ायदा उठाने के लिये आज़म ने साहू को छोड़कर उससे सुलह कर ली थी। लेकिन दुनिया में हर शख़्स के दोस्त और दुश्मन होते हैं। जहां बहुत से लोगों ने साहू का साथ दिया, कुछ लोगों ने उसका विरोध भी किया। आपस की इस फूट से मुग़लों का बड़ा फ़ायदा हुआ। कहां तो मौक़ा था कि मरहठे ज़ोर लगाकर मुग़ल सल्तनत को उलट दें, कहां घर की लड़ाई शुरु हुई। मरहठों की प्रबल शक्ति के सामने जब प्रतापी औरंगज़ेब को लोहे के चने चबाने पड़े तो बेचारा बहादुरशाह क्या उनका मुक़ाबिला कर सकता था! लेकिन दुर्मति ने अपना काम किया और अपनी बेवक़ूफ़ी से मरहठों ने हिंदू साम्राज्य स्थापित करने का

एक बड़ा अच्छा मौक़ा हाथ से खो दिया। यह उनकी बड़ी भारी भूल थी। कामबख़्श के मरने के बाद बहादुरशाह ने चाहा कि मरहठों से सुलह हो जाय। ज़ुलफ़िक़ारखां चाहता था कि सुलह साहूजी से हो लेकिन मुनीमखां की राय थी कि उन्हीं शर्तों पर ताराबाई से सुलह हो। ज़ुलफ़िक़ारखां दक्खिन का सूबेदार बनाया गया। चूंकि ज़ुलफ़िक़ारखां को दरबार से छुट्टी नहीं मिल सकती थी उसकी जगह पर दाऊदखां तैनात किया गया। दाऊद ने ज़ुलफ़िक़ारखां की बात मानकर साहूजी से सुलह कर ली। तै हुआ कि मरहठों को चौथ दी जायगी लेकिन मुग़लों के अफ़सर उसको इकट्ठा करके उन्हें दे देंगे। मरहठों को चौथ इकट्ठा करने से कुछ मतलब नहीं रहेगा। वैसे देखने से तो मालूम होता है कि इसमें मरहठों का फ़ायदा हुआ क्योंकि बिना मिहनत घर बैठे उनको चौथ मिल जायगी। लेकिन चतुर मुग़ल सूबेदार का मतलब था कि घर बैठे चौथ लेने में मरहठों का प्रभाव घट जायगा। सर्व साधारण से उनको बहुत कम मतलब रहेगा, इसलिये लोग उनका उतना डर नहीं मानेंगे। इस इंतिज़ाम से मरहठों की लूट बहुत कुछ बंद हो गई। बहादुरशाह के वक़्त में दक्खिन में बहुत कुछ शांति रही। इस कारण से बहादुरशाह को दक्खिन से फ़ुर्सत मिल गई। अब उसने अपना समय और शक्ति दूसरे आवश्यक कामों में लगाई। बहादुरशाह का ध्यान अब राजपुताना की ओर

गया। उसने समझा कि मुग़ल राज्य की गिरी पड़ी अवस्था में राजपूतों से लड़ना ठीक न होगा। इस विचार से उसने राजपूतों से संधि करना चाहा। इससे बहादुरशाह की राजनीति-पटुता का पता लगता है। उसने एक होशियारी और भी की। राजपूत रियासतों की ताक़त का अंदाज़ा लगाकर उसने सुलहनामे की शर्तों को मुलायम और कड़ा बनाया। वह जानता था कि उदयपुर राजपूतों का शिरोमणि और हिंदूजाति का सर्वप्रधान स्तंभ है। इसलिये उदयपुर के लिये उसने बड़ी नरम शर्तें पेश कीं। सुलहनामे के मुताबिक़ उदयपुर सब तरह स्वतंत्र हो गया, उसको बरायनाम मुग़लों का आधिपत्य मानना पड़ा। जोधपुर की शर्त उससे कुछ कड़ी थी। जोधपुर को मुग़लों की मदद के लिये आवश्यक सेना रखनी पड़ी। जैपुर के सुलहनामे में और भी अधिक कड़ाई थी। बहादुरशाह ने जिस चालाकी से काम किया था वह सिद्ध नहीं हुई। जोधपुर और जैपुर के राजाओं ने मिलकर मुग़लों से लड़ने का विचार किया। लड़ाई ठन गई होती लेकिन तबतक ख़बर आई कि सिक्खों ने सरहिंद दख़ल कर लिया। बहादुरशाह अब क्या करता? हार मानकर उसने जोधपुर और जैपुर से उनकी मुँहमांगी शर्तों पर सुलह की। नए सुलहनामे क़रीब क़रीब उन्हीं नियमों पर हुए जो उदयपुर के साथ तै हुए थे।

अब मरहठों और राजपूतों से छुट्टी पाकर बहादुरशाह

सिक्खों का मुक़ाबिला करने के लिये बढ़ा। सिक्ख धर्म, उसके संस्थापक और गुरुओं का हाल पहले लिखा जा चुका है। सिक्ख धर्म का मुख्य उद्देश्य था हिंदू मुसलमानों के वैर-भाव को मिटाकर उनको एक करना। सिक्ख धर्म का कहना था कि हिंदू और मुसलमान दोनों एक ही परम पिता की संतान हैं, दोनों परमात्मा के प्यारे हैं, दोनों बराबर हैं। लेकिन एक गिरी हुई जाति का अपने विजेता के सामने बराबरी का दावा करना धर्म की दृष्टि से चाहे जैसा हो, साधारण बुद्धि से देखने पर धृष्टता मात्र मालूम होती है। जब संसार में आपकी कोई गिनती नहीं, दुनिया आपको अपने पैर की धूलि मानने को तैयार नहीं है, उस वक्त खाम-ख्वाह ईश्वर का नाम लेकर, अपने पूर्वजों की बड़ाई का दम भरकर पंच बराबर होना बे-शरमी है। जो चाहता है कि दूसरे लोग उसको भाई मानें, उसको बराबर का दरजा दें, उसको चाहिए कि दूसरे लोगों की तरह आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक उन्नति करे। बिना इसके स्थायी मित्रता, स्थायी बंधुत्व हो ही नहीं सकता है। अगर भलमनसाहत का ख्याल करके, हमारे सूखे और उदास चेहरों पर दया करके, किसी ने मित्रता का हाथ बढ़ा भी दिया तब भी इतने से क्या हो सकता है। पहले योग्यता उत्पादन करो फिर इच्छा प्रगट करो। परतंत्र हिंदुओं के गुरु साधु नानक ने जो ऐक्य का बिगुल फूँका वह स्वार्थ समझा

गया, ढोंग माना गया, राजविद्रोह क़रार दिया गया। अत्याचार पर अत्याचार होने लगे। विवश होकर सिक्खों को वीर बनना पड़ा। मुसलमानों की तरह शक्तिशाली बनना पड़ा तब कुछ काम चला।

बहादुरशाह के वक़्त में बंदा गुरु की मातहती में सिक्खों ने बहुत से इलाक़े दखल कर लिए। उन्होंने सरहिंद के सूबेदार को शिकस्त देकर वहां अपना अधिकार जमाया। उसके आगे सतलज और यमुना पार करते हुए वे लोग सहारनपुर तक पहुँच गए। वहां के अफ़सरों ने कुछ मुक़ाबिला किया और सिक्ख लोगों ने भागकर लुधियाना और वहां की पहाड़ियों के बीच में अपना अड्डा जमाया। इसमें उनको यह सुभीता था कि मौक़ा पड़ने पर पहाड़ियों में छिप जाते थे। उनका पीछे हटना भी स्थायी नहीं था क्योंकि मौक़ा पाने पर उन लोगों ने एक तरफ़ लाहौर और दूसरी तरफ़ दिल्ली तक धावा कर दिया। ऐसे ही उपद्रवों से व्याकुल होकर बहादुरशाह दौड़ा हुआ दक्खिन और राजपुताने से वापस आया। सिक्खों के सत्यानाश का उसने पूरा प्रण कर लिया। बड़े ज़ोर से सिक्खों का पीछा किया गया। अंत में बंदा गुरु और उसके साथी एक क़िले में छिप गए। क़िला चारों ओर से घेर लिया गया। बाहर से रसद का आना जाना बंद हो गया। सिक्खों के लिये दो ही रास्ते थे। वे या तो प्राण की रक्षा करते हुए अपनी मान मर्यादा खोकर शत्रु की शरण में

दिया। वह फ़र्रुख़सियर की मदद के लिये जी जान से तैयार हो गया। हुसेनअली का भाई सैयद अबदुल्लाह इलाहाबाद में सूबेदार था। वह भी अपने भाई के कहने से फ़र्रुख़सियर की मदद के लिये तैयार हो गया। इन दोनों रईसों की मदद से फ़र्रुख़सियर ने इलाहाबाद के पास एक ख़ासी पल्टन इकट्ठी की। फ़ौज जुट जाने पर जहांदारशाह को तख़्त से उतारकर फ़र्रुख़सियर को बादशाह बनाने का यत्न होने लगा।

अच्छी तरह तैयार होकर ये लोग आगे बढ़े। इनको रोकने के लिये बादशाह ने एक सेना भेजी थी जिसको परास्त करके ये लोग अपने इरादे को पूरा करने के लिये बढ़ चले। आगरे के पास जहांदारशाह और जुलफ़िक़ार ने ७ हज़ार सेना लेकर इनका मुक़ाबिला किया। बड़े ज़ोर की लड़ाई हुई। इधर बहादुर सैयद के भाइयों की मदद और उधर बादशाहत का ज़ोर। सैयद हुसेनअली ज़ख़मी हुआ और थोड़ी देर तक ख़्याल हुआ था कि वह मर गया। लेकिन उस बहादुर को तो अंतिम मुग़ल साम्राज्य का सूत्रधार बनकर अभी कितने परदे गिराने थे, कितने सीन बदलने थे, कितने दर्शकों को मुग्ध करके कितने दफ़े करतल ध्वनि के साथ 'वंस मोर' (Unce more) सुनकर तब कहीं 'लास्ट नाइट' (Last night) करना था। इसलिये मरते मरते भी वह न मरा। अंत में फ़र्रुख़सियर की जीत हुई। जहांदारशाह

छिपकर जान लेकर भागा। बची हुई सेना लेकर जुलफ़िक़ार भी चलता हुआ।

जहांदारशाह ने प्राण बचाने के लिये जुलफ़िक़ार के बाप असदखां के घर में शरण ली। उसने समझा कि जिस खानदान ने हमेशा से बादशाहों की मदद की है उस खानदान के होने की वजह से, अपने लड़के के रुतबे का ख़्याल करके और अगर कुछ नहीं तो शरणागत की रक्षा के ख़्याल से असद ज़रूर उसका साथ देगा, उसकी मदद करेगा, कम से कम उसकी जान जोखिम में न पड़ने देगा। लेकिन बेवक़ूफ़ बादशाह का ख़्याल बिल्कुल ग़लत था। दुनिया के धन दौलत और खास कर तख़्त नाम से पुकारी जानेवाली बैठक ने क्या क्या आफ़तें की हैं इसका शायद उस ऐयाश बादशाह को पता न रहा हो।

अगर उसने अपने खानदान की तवारीख़ को पढ़ा होता तब भी उसको पता चल गया होता। हुमाऊं ने अपने भाई कामरां को अंधा कर देना ही काफ़ी नहीं समझा। उस अभागे क़ैदी की आंखों में नश्तर लगाए गए। जब इस पर भी वह न बोला नमक डाल आंखों में नींबू का रस डाला गया।

जहांगीर ने अपने बूढ़े बाप को मरते दम तक तकलीफ़ दी, शाहजहां ने उसके पाप का बदला दिया। औरंगज़ेब ने तो ज़ुल्म और ज़्यादतियों की हद कर दी, बाप को क़ैद

करके, भाइयों को एक एक करके तबाह कर डालने पर भी वह शांत नहीं हुआ। बाद में भी कितने बे-गुनाह बच्चे क़त्ल किए गए। बहादुरशाह ने भी कुछ उठा नहीं छोड़ा। आप देख चुके हैं कि खुद हज़रत जहांदारशाह ने तख़्त पर बैठते ही अपने खानदान के तमाम बच्चों को क़त्ल करने की खुशी मनाई थी। अपने भाग्य से या ईश्वर की ओर से जहांदार को दंड देने के लिये उसका भतीजा फ़र्रुखसियर बच गया था। आज पाप के प्रायश्चित्त भोगने की घड़ी आ पहुँची तब जहांदार साहब घबराए, घबराकर आपने एक पुराने बे-ईमान के पुराने दग़ाबाज़ बाप के हाथ में अपना शरीर और प्राण अर्पण किए। आपने विश्वास किया लेकिन बूढ़े ने इनको धोखा दिया। आते ही उसने इनको हिरासत में लिया। ज़ुलफ़िक़ार के आने पर उसने इनको उसके हवाले किया। बाप ने बेटे को समझाया कि वह जहांदारशाह को नए बादशाह के हवाले करके अपना पुराना रुतबा हासिल करे। उधेड़ बुन के बाद अब्बा साहब की बात ज़ुलफ़िक़ार की समझ में आ गई। आप क़ैदी जहांदार को लेकर फ़र्रुखसियर के पास पहुँचे। दुश्मन को पाकर वह खुश हुआ। जहांदारशाह को शाही हुक्म से प्राण-दंड हुआ और फ़ौरन् उसकी तामील हुई। अच्छी बात तो यह हुई कि बे-ईमान, शरारती, नमकहराम, और दग़ाबाज़ ज़ुलफ़िक़ार को उसके पाप का बदला मिला। फ़र्रुखसियर ने फ़ौरन् गला

घुटवाकर उसको मरवा डाला । उसने ग़लती यह की कि बूढ़े असद को जीता जागता छोड़ दिया। उसका क़सूर सबसे बड़ा था, इसीलिये शायद सबसे कड़ी सज़ा भोगने के लिये उसका इंसाफ़ सबसे बड़े हाकिम, सबसे बड़े बादशाह, सबसे बड़े मुंसिफ़, शाहंशाहों के शाहंशाह परमात्मा के हाथ में छोड़ दिया गया।

इस तरह शत्रु को पराजित करके, लड़ाई में जीतकर अपने सहायक सैयद भाइयों की मदद से फ़र्रुख़सियर सन् १७१३ ई० में तख़्त पर बैठा।

नवाँ अध्याय।

फ़र्रुख़सियर।

१७१३—१७१६

फ़र्रुख़सियर ने तख़्त पर बैठते ही सैयद भाइयों को उनकी नेकी का बदला दिया। बड़ा भाई अबदुल्लाहख़ां वज़ीर बनाया गया। छोटे भाई हुसेनअली को अमीरुलउमरा यानी सेनापति का दरजा मिला। इस तरह सल्तनत के सबसे बड़े दोनों दरजे इन्हीं लोगों को मिले।

फ़र्रुख़सियर नाममात्र को बादशाह था। असल में कुल अधिकार सैयदों के हाथ में था। बादशाह उनके हाथों में नाचनेवाली कठपुतली था। वह कुछ तो अहसानों से दबा था और कुछ उनकी ताक़त से डरा था। वह जानता था कि उनसे बिगाड़ करना बैठे बिठाए मौत बुलाना है। इधर तो यह कमज़ोरी का भाव था उधर चित्त में ग्लानि भी होती थी। वह सोचता था कि ऐसी बादशाहत से क्या मतलब जिसमें ख़ुद अपने नौकरों से दबना पड़े। इन दो विपरीत भावों ने उसके चित्त में प्रवेश किया। वह कभी एक ओर ढलता था और कभी दूसरी ओर।

अंत में आत्मगौरव ने विजय पाई और उसने सोचा कि

जैसे हो वैसे सैयद भाइयों को परास्त किया जाय। मन में यह बात ठानकर भी उसने खुलकर लड़ाई करना उचित नहीं समझा। इसमें उसने बड़ी चतुराई की क्योंकि भेद फ़ौरन् खुल जाने पर वे उसकी शक्ति को चूरमूर कर देते। इस काम में अपनी मदद करने के लिये उसने ज़ुलफ़िक़ारखां के नायब दाऊदखां को साथ लिया। इस मतलब से पहले तो हुसेनअली दक्खिन का सूबेदार बनाकर भेजा गया फिर गुप्त रीति से दाऊद उसका मुक़ाबिला करने के लिये रवाना किया गया। दाऊद में जहां बहादुरी थी वहां बेवक़ूफ़ीभी हद दरजे की थी। उसने बहादुरी से हुसेनअली का सामना किया। आशा थी कि वह जीत जायगा लेकिन तब तक उसको अचानक गोली लग गई जिससे उसका काम तमाम हो गया।

मैं कहना भूल गया कि इसके पहले बादशाह ने हुसेन-अली को जोधपुर के राजा अजितसिंह से लड़ने के लिये भेजा था। इधर तो आपने हुसेनअली को अपनी पल्टन का मालिक बनाकर भेजा, उधर अजितसिंह के पास संदेश भेजा कि हुसेनअली के मरने से बादशाह बहुत खुश होंगे। चतुर सैयद ये बातें अच्छी तरह समझता था। इसलिये जितनी जल्दी हो सका उसने राजा से सुलह कर ली।

दाऊद को शिकस्त देकर हुसेनअली मरहठों को परास्त करने की तैयारी करने लगा। तब तक आपस के झगड़े के

कारण सिक्ख फिर जाग उठे। बंदा गुरु ने शाही पल्टन को हराकर लूटपाट करना शुरू किया।

अब्दुस्समदखां की मातहती में मुग़ल सेना सामना करने के लिये भेजी गई। सिक्ख परास्त हुए। गुरु और उनके साथी गिरिफ़्तार हुए। उनमें से बहुत से फ़ौरन् क़त्ल किए गए। लेकिन ७४० सहायकों के साथ बंदा गुरु दिल्ली भेज दिए गए। दिल्ली पहुँचने पर उनकी बड़ी दुर्दशा की गई। भेड़ की खाल पहनाकर ऊंट पर चढ़ाकर वे लोग शहर में घुमाए गए। वे लोग बड़ी निर्दयता से मारे गए। उनको मुसलमान होने के लिये बहुत से लालच दिए गए। लेकिन धर्म देकर प्राणरक्षा करना उन्होंने सीखा नहीं था। साथी सब एक एक करके ७ दिन में क़त्ल किए गए। अकेले बंदा गुरु अब बच गए। बादशाह ने समझा था कि शायद साथियों की दुर्दशा देखकर उनकी अक़्ल ठंढी हो जाय लेकिन गुरु ने धर्म को ज़बरदस्त हाथों से पकड़ा था, जिसको न तो किसी तरह का लोभ ढीला कर सकता था और न किसी तरह का संकट छुड़ा सकता था।

गुरु एक लोहे के पिंजड़े में बंद किए गए। सुनहला कपड़ा पहनाया गया और सर में लाल पगड़ी बाँधी गई। वे शहर में घुमाए गए। नंगी तलवार हाथ में लेकर जल्लाद पीछे खड़ा था। मरे हुए साथियों के सर अगल बगल में लटकाए गए। उसके बाद गुरु के हाथ में कटार देकर हुक्म

दिया गया कि वे अपने लड़के का सर धड़ से अलग करें। इनकार करने पर बच्चा बड़ी बे-रहमी से काट डाला गया। उसका कलेजा निकालकर गुरुजी के चेहरे पर फेंक दिया गया। अंत में आपकी बारी आई। गरम सींकचे से आप का मांस नोचा गया लेकिन धन्य है आत्मिक बल कि चेहरे पर ज़रा भी शिकन नहीं पड़ी, घबराहट का नाम भी नहीं था। अकाल पुरुष का नाम लेते हुए आपने सुख से शरीर छोड़ा।

गुरु के मरने के बाद सिक्ख लोग ढूंढ़ ढूंढ़कर मारे गए। थोड़ी देर के लिये सिक्ख लोग दब गए। कभी कभी वे इधर उधर थोड़ा बहुत लूट पाट कर देते थे लेकिन अब इनमें इतना बल नहीं था कि बादशाहत को इनसे किसी तरह का अंदेशा होता।

उस वक्त सिक्खों से कहीं अधिक भयंकर मरहठे हो गए थे। उनके उपद्रव के मारे शाही पल्टन के नाकों दम थे। इनका मुक़ाबिला करने के लिये दाऊदखां भेजा गया। लेकिन उसको किसी तरह की कामयाबी नहीं हुई। विवश होकर हुसेनअली ने सुलह कर ली जिसके मुताबिक़ मरहठों को उनके सब पुराने क़िले वापस मिल गए। उनको दक्खिन की मालगुज़ारी का चौथा हिस्सा चौथ के नाम से वसूल करने का अधिकार मिला। इसके ऊपर से सरदेशमुखी के नाम से दशमांश वसूल करने का हक़ उनको दिया गया।

करने के लिये बड़ा भारी भूकंप आ गया। लोगों ने समझा कि अब बुरे दिन आनेवाले हैं। इधर सच्चे और झूठे विचारों से लोगों का विश्वास उठता जाता था और उधर सैयदों का भी धैर्य छूटता जाता था। कवि ने ठीक कहा है।

"जाकहँ प्रभु दारुण दुख देहीं।
ताकर मति पहिले हरि लेहीं॥"

अपनी मा के सिखाने से बादशाह ने सैयदों से कोई मुख़ालिफ़त नहीं दिखाई। वह जानता था कि नाहक़ दुश्मनी करके फ़र्रुख़सियर की तरह प्राण से हाथ धोना पड़ेगा। वह चुप चाप मौक़ा देख रहा था। सैयदों को बलथक होते देखकर वह स्वतंत्र होने का उपाय सोचने लगा। इस काम में मुहम्मद अमीनखां से उसको सहायता मिलती थी। अमीन उन लोगों में से था जिन्होंने फ़र्रुख़सियर की बेवक़ूफ़ी से उसका साथ छोड़कर सैयदों से ऊपरी दोस्ती करली थी। उनसे मिलकर वह दिन रात उनकी जड़ खोदने की फ़िक्र में रहता था। वह तुर्की भाषा में बादशाह से बात चीत किया करता था। हिंदुस्तानी सैयद वह भाषा नहीं समझ सकते थे। इस तरह सब के सामने भरी सभा में वह बादशाह के साथ गुप्त वार्ता कर लिया करता था। इससे उसको बादशाह के हृदय का भेद मिल जाया करता था। ऐसा करके उसने धीरे धीरे एक गिरोह तैयार करना शुरू किया। दूसरा आदमी जिसने इस काम में सहायता की सआदतखां था। वह

खुरासान का सौदागर था। बादशाही नौकरी में बढ़ते बढ़ते उसको सेनापति का पद मिल गया था।

सैयदों को इस गुप्त रहस्य का कुछ कुछ पता चल गया। वे बड़ी कठिनाई में पड़े। उधर चिनकिलिचखां का मुक़ाबिला करना, इधर बादशाह को अपने क़ाबू में रखना, दोनों कामों का एक साथ होना बड़ा कठिन था। अंत में यह तै हुआ कि हुसेनअली बादशाह और उसके साथियों को लेकर दक्खिन में जाय और अब्दुल्लाह दिल्ली में रहकर अपनी खानदान का असर क़ायम रखे। यह बात निश्चय करके दोनों भाई आगरे से रवाना हुए। यह उनका अंतिम मिलन था। बिछुड़ते समय उनके हृदय काँप रहे थे, दिल दहलता था। उनके चित्त में शंका हो रही थी। मालूम होता था कि कोई घोर आपत्ति आनेवाली है। लेकिन दूसरी कोई सूरत नहीं थी। इसलिये कलेजा कड़ा करके वे पृथक् हुए और हमेशा के लिये एक दूसरे से विदा हुए।

शत्रुओं ने काम करने का यह अच्छा मौक़ा देखा। हुसेन-अली के मारने की तैयारी हो गई। मीर हैदर नाम के एक जंगली आदमी ने इस काम को उठाया। वह निहायत वहशी था और मुश्किल से मुश्किल और खराब से खराब काम के लिये तैयार रहा करता था। जब हुसेनअली पालकी पर चढ़कर जा रहा था, हत्यारे ने एक दरख़्वास्त लिखकर पेश करनी चाही। साथियों ने उसको आने से

जाटों का राजा चूड़ामणि आकर उससे मिल गया। इसके अलावा हुसेनअली के बहुत से पुराने सिपाही वापस आए।

इधर मुहम्मदशाह को जयसिंह और रुहेलों से मदद मिली। जयसिंह ने ४ हज़ार सवार भेजे थे। आगरे और दिल्ली के बीच में मुठभेड़ हुई। ग़रीब अब्दुल्लाह हार गया और क़ैद कर लिया गया। मुहम्मदशाह के लिये तारीफ़ की बात है कि उसने उसका प्राण नहीं लिया।

धूमधाम से बादशाह ने दिल्ली में प्रवेश किया। सच पूछिए तो इसी तारीख़ से मुहम्मदशाह की बादशाहत कहनी चाहिए। लोगों को बड़े बड़े इनाम और दरजे दिए गए। मुहम्मद अमीन को वज़ीर का दरजा दिया गया। लेकिन वह उस पद का सुख न भोग सका। फ़ौरन् उसकी मौत हो गई। इतनी अचानक मौत में अकसर ज़हर का शुबहा होता है लेकिन इस सूरत में दूसरी ही वजह बयान की जाती है, जिसका मानना या न मानना आपके अधिकार में है।

कहते हैं कि दिल्ली में एक फ़क़ीर आया था। उसने अपना एक नया मज़हब निकाला था और अपनी मनगढ़ंत भाषा में एक धर्मग्रंथ भी तैयार किया था। उसके बहुत से शागिर्द हो गए थे और लोगों में भी उसका अच्छा प्रभाव फैल गया था। मुहम्मद अमीन को नया नया मंत्री पद मिला था। उसने फ़क़ीर को दबाने और धमकाने के लिये बहुत से सिपाही भेजे। हुक्म दिया गया था कि फ़क़ीर

क़ैद कर लिया जाय। लेकिन फ़क़ीर की गिरिफ़्तारी के पहले वज़ीर खुद बीमार पड़ गया। लोगों ने जाकर महात्मा से क्षमा मांगी लेकिन उन्होंने कहा कि बोला हुआ वचन और छोड़ा हुआ तीर वापस नहीं आता है। थोड़ी देर में मुहम्मद अमीन का देहांत हो गया।

चिनकिलिचखां क़ायम मुक़ाम वज़ीर हुआ। वह आसफ़-जाह के खिताब से मशहूर हुआ। इसके अलावा हर रोज़ बादशाहत की बरबादी की खबर आने लगी। सैयद भाइयों ने अजितसिंह की खैरख्वाही में उसको गुजरात का सूबा दिया था। मुहम्मदशाह ने अपना रिश्ता निबाहने के लिये उसको अजमेर की जागीर दी। शाही मुहर से दोनों सूबों की सल्तनत उसको मिल गई थी। लेकिन लूटपाट के दिन में मुहर और क़ब्ज़ा कौन देखता है? अजितसिंह की ओर से कोई राजपूत नायब राज्य कर रहा था। मुसलमानी प्रजा ने उसको निकालकर बाहर किया। वह भागकर अजितसिंह के पास जोधपुर में गया। क्रोधित होकर अजित ने अजमेर पर हमला किया और लूटपाट करते हुए रेवारी होते हुए दिल्ली से पचास मील की दूरी पर वह पहुँच गया। उसको रोकने की बड़ी कोशिश हुई लेकिन कुछ नतीजा नहीं हुआ। अंत में सुलह हुई और अजमेर अजित को वापस मिला।

कुछ दिन के बाद आसफ़जाह ने वज़ीर के काम का

चार्ज लिया । मुक़र्ररी का हाल तो उसको बहुत पहले मालूम हो गया था लेकिन उसको अपनी दक्खिन की सल्तनत से छुट्टी न थी। दिल्ली के बरायनाम बादशाह के वज़ीर होने की जगह दक्खिन का ख़ुदमुख़्तार बादशाह होना वह ज्यादा पसंद करता था । इसलिये सबसे पहले दक्खिन में पैर जमा लेना उसने मुनासिब समझा । इसके लिये मरहठों से अनेक लड़ाइयां लड़नी पड़ीं । उनसे निपट लेने पर वह दिल्ली आया।

दरबार में अजब अंधेर मचा हुआ था। न तो कोई उसूल था और न कोई क़ायदा क़ानून था । बादशाह रात दिन ऐश में चूर रहता था । उसके साथी भी उसीकी उम्र के नाच रंगवाले लोग थे । सल्तनत क्या थी भठियारख़ाना था। बादशाह वैसे तो ऐयाशी में डूबे ही रहते थे लेकिन एक ख़ास तवायफ़ से उनका विशेष प्रेम था । वह जो चाहती वही होता था। यह दशा देखकर आसफ़जाह ऊपर से नाराज़ होता था लेकिन मन ही मन प्रसन्न होता होगा क्योंकि उसको तो अपनी अलग बादशाहत बनाने की धुन पड़ी थी। वह जानता था कि ज्यों ज्यों दिल्ली की सल्तनत कमज़ोर होगी त्यों त्यों उसको अपना ज़ोर जमाने का मौक़ा मिलेगा। यह होते हुए भी उसमें इतनी हिम्मत नहीं थी कि दिल्ली की बादशाहत को दबा बैठता। उसमें इतनी चालाकी भी नहीं थी कि अपनी बातों से बादशाह को ख़ुश कर लेता ।

जिस तरह आसफ़जाह संदेह में पड़ा था वैसे ही बादशाह भी संसपंज में था। वह न तो आसफ़जाह को खुलकर दबाना चाहता था और न उसमें उसका विश्वास जम सकता था।

अंत में बादशाह ने एक युक्ति सोची। गुजरात का सूबेदार हैदरकुली बादशाह के साथ देनेवालों में से था। लेकिन अपने ग़रूर से उसने उसको नाखुश कर लिया था। सोचा गया कि आसफ़जाह से अगर वह भिड़ा दिया जाय तो दोनों आपस में लड़कर सर हो जायँगे और इस तरह दोनों बादशाह के खुश करने की कोशिश करेंगे। हैदर को हुक्म दिया गया कि वह गुजरात का सूबा आसफ़जाह को दे दे। जैसी आशा की गई थी, हैदर ने लड़ाई करने की तैयारी कर दी। यह सब होने पर भी बादशाह की हिकमत न चली, क्योंकि आसफ़जाह ने हिकमत से काम लिया। हैदर की सेना भागकर दुश्मन की ओर चली आई। इसलिये बहुत जल्द लड़ाई खतम करके, एक नए सूबे की जीत से अपना बल और बढ़ाकर आसफ़जाह दिल्ली वापस आया।

आसफ़जाह के लौटने के पहले जाटों ने आगरे के नायब सूबेदार को मार डाला। बदला लेने के लिये जयसिंह खुद तैनात किए गए। कहना नहीं होगा कि जयसिंह जाटों के पुराने दुश्मन थे। आपको अपनी ताक़त दिखाने और खैरख्वाही लूटने का बड़ा अच्छा मौक़ा हाथ लगा। इसी

बीच में जाट राजा चूड़ामणि का देहांत हो गया। जयसिंह को चाल चलने का अच्छा मौक़ा हाथ लगा। आपने चूड़ामणि के भतीजे को उसके लड़के के खिलाफ़ खड़ा करके उसको राजा बना दिया। उसने दिल्ली की सल्तनत को मालगुज़ारी देना क़बूल किया।

बादशाह और आसफ़जाह का मनमुटाव नहीं मिटा। तब तक आसफ़जाह ने कोई हीला ढूंढ़कर अपना इस्तीफ़ा भेज दिया और ऐसा करके दक्खिन का रास्ता लिया। बादशाह खुश हुआ। उसने नहीं सोचा कि उस तारीख़ से आसफ़जाह स्वतंत्र राजा हो गया और दक्खिन का मशहूर सूबा दिल्ली की सल्तनत से निकल गया। बादशाह की खुशी की वजह यह थी कि आसफ़जाह के फ़सादों से उसको छुटकारा मिला। बाद में उसको मालूम हो गया कि दक्खिन में खुदमुख़्तार होकर आसफ़जाह ने उसका जितना बड़ा नुक़सान किया उतना शायद वह दिल्ली में रहकर नहीं कर सकता था। अब उसने आसफ़जाह का हौसला रोकने का इरादा किया। इस काम के लिये मोबारिज़ख़ां तैनात किया गया। वह हैदराबाद का सूबेदार था। उसको हुक्म हुआ कि वह आसफ़जाह से दक्खिन की सल्तनत वापस ले ले। बादशाह के हुक्म से वह दक्खिन की ओर रवाना हुआ। वहां जाकर उसने एक ज़बरदस्त फ़ौज इकट्ठी की।

मोबारिज़ को अपने बल का भरोसा था और आसफ़जाह को अपनी बुद्धि का। आसफ़जाह बहुत दिन तक लिखा पढ़ी करता रहा और इस बीच में मोबारिज़ के साथियों में फूट फैलाता रहा। अंत में जब उसने देखा कि इससे काम नहीं चलेगा, लड़ाई छेड़ दी गई। भीषण युद्ध के बाद आसफ़जाह फ़तहयाब रहा। मोबारिज़खां पराजित हुआ और मारा गया। चूंकि बादशाह ने खुलकर मुक़ाबिला नहीं किया था, आसफ़जाह ने मोबारिज़ का सर उसके पास भेजकर उसको मुबारकबादी दी।

इसके बाद आसफ़जाह हैदराबाद में रहने लगा। गो कि दिल्ली की सल्तनत से हर तरह आज़ाद हो गया था, फिर भी वह कभी कभी नज़र और तुहफ़े भेजता रहा। दक्खिन में उसको बादशाह से कोई डर नहीं था। लेकिन दूसरे ज़बरदस्त दुश्मन उसके लिये बैठे हुए थे और वे दुश्मन थे मरहठे लोग। वे लोग बहादुर तो थे ही, उनमें मेल भी बहुत था। ऐसे वीरों की संगठित और संयुक्त शक्ति का सामना करना आसफ़जाह के लिये आसान काम नहीं था। इसलिये उसने हिकमत से काम लिया। साहू के खिलाफ़ उसने संभा को दावीदार खड़ा किया। आसफ़जाह की मदद की वजह से संभा का पल्ला भारी हो गया था और ख्याल किया जाता था कि साहू को नीचा देखना पड़ेगा। लेकिन साहू के चतुर मंत्री बालाजी विश्वनाथ ने ऐसा नहीं होने दिया।

पहले ज़रूरत है कि लड़ाई और हमले करके मरहठों को युद्धशील और बलवान् बनाया जाय। इस विचार से बाजीराव ने प्रस्ताव किया कि मुग़ल राज्य के उत्तरी हिस्से पर हमला कर दिया जाय। वह जानता था कि मुग़ल सल्तनत इतनी कमज़ोर हो गई है कि एक धक्के में गिर पड़ेगी। वह कहता था कि मुग़ल राज्य के विशाल वृक्ष के गिराने के लिये उसकी सड़ी हुई जड़ में धक्का लगाना अधिक उत्तम होगा। वृक्ष के गिर जाने पर शाखें और पत्ते अपने आप गिर पड़ेंगे। बाजीराव के वचनों में वीरोचित प्रभाव था। उसने इतनी उत्तमता से अपने पक्ष का समर्थन किया कि राजा उसकी ओर हो गया। अपना प्रभाव पड़ता देखकर बाजीराव ने राजा से पूछा "क्या मैं महाराष्ट्रीय झंडा नर्मदा के उस पार ले जा सकता हूं?" राजा ने प्रसन्न होकर जवाब दिया।

"मैं आशा करता हूं कि तुम उसको हिमालय पर्वत पर ले जाकर गाड़ दोगे।"

राजा का उत्तर सुनकर और लोगों ने भी बाजीराव की बात का समर्थन किया। वीर पेशवा ने दृढ़ता से अपना कार्य उठाया।

इस काम में मुग़लों की मूर्खता से भी उसको बड़ी सहायता मिली। मोबारिज़ से लड़ाई होने के थोड़े दिन पहले आसफ़जाह मालवा और गुजरात के सूबे से हटा दिया गया

था। उसकी जगह पर मालवा में राजा गिरधर तैनात किया गया था लेकिन वहां की सेना दक्खिन की लड़ाइयों में बुला ली गई। मौक़ा देखकर बाजीराव ने हमले शुरू किए। गिरधर में उसका सामना करने की ताक़त कहां थी!

इधर गुजरात में आसफ़जाह का चचा हामिदखां तैनात किया गया था। मरहठों का मुक़ाबिला करना तो अलग रहा उसने उल्टे उन लोगों से मदद मांगी। उसने उन लोगों को चौथ और सिरदेशमुखी देना क़बूल किया। सरबुलंदखां ने हामिद को ज़रूर शिकस्त दी, लेकिन मरहठों को परास्त करने की शक्ति उसमें नहीं थी, इसलिये हामिद के मंज़ूर किए हुए टैक्स उसने भी क़ायम रखे।

सब कुछ होते हुए भी आसफ़जाह की ताक़त काफ़ी बढ़ गई थी। उसके दिल में मरहठों के दबाने का हौसिला हुआ। उसने इस काम के लिये उनमें फूट पैदा करने की कोशिश की। उसने इस काम को सिद्ध करने के लिये प्रतिनिधि से सुलहनामा किया जिसके मुताबिक़ चौथ और सिरदेशमुखी के बदले नए इलाक़े दिए जाने के वादे हुए। लेकिन बाजीराव कब ऐसी संधि होने देता। उसने इसका विरोध किया। प्रतिनिधि में इतनी शक्ति नहीं रह गई थी कि वह कोई काम बाजीराव के ख़िलाफ़ कर लेता। अस्तु आसफ़जाह का सब परिश्रम निष्फल हुआ। उस चतुर राजनीतिज्ञ ने दूसरी युक्ति सोची। संभा अब भी जीता जागता था। उसने कोल्हा-

पुर में अपनी राजधानी क़ायम की थी और रियासत का अब भी वह दावेदार था। महज़ झगड़ा खड़ा करने के लिये आसफ़जाह ने टैक्स देना रोक दिया। उसने कहा कि पहले साहू और संभा आपस में तै कर लें कि उनमें से राजा कौन है।

उसकी यह कुटिलता देखकर साहू बड़ा नाराज़ हुआ। बाजीराव ने आसफ़जाह की दुष्टता का बदला देने का निश्चय किया। उसने आसफ़जाह के इलाक़े पर हमला किया। सबसे पहले बुरहानपुर पर धावा हुआ। संभा ने आसफ़जाह का साथ दिया।

जब आसफ़जाह सामना करने के लिये आया बाजीराव गुजरात की ओर चला गया। वहां लूटपाट करके और आग लगाकर वह बड़ी फुर्ती से दक्खिन में वापस आया। जहां आसफ़जाह की सेना पड़ी थी, उसके चारों ओर के मुल्क को वह बरबाद करने लगा। जब पल्टन भूखों मरने लगी, आसफ़जाह ने सुलह कर ली। उसने संभा का साथ छोड़ दिया और पहले से अधिक मुलायम शर्तों पर साहू से दोस्ती की।

इधर बाजीराव ने आसफ़जाह का मद चूर्ण किया, इधर प्रतिनिधि ने संभा को शिकस्त दी। हार मानकर संभा ने साहू को राजा स्वीकार किया। कोल्हापुर के पास थोड़ा सा इलाक़ा उसकी गुज़र के लिये दिया गया। इस कामयाबी के

होते हुए भी प्रतिनिधि की उतनी इज़्ज़त नहीं थी जितनी पेशवा की थी।

दोनों तदबीरों के नाकामयाब होने पर आसफ़जाह कोई तीसरी युक्ति सोचने लगा। अब की बार उसने पुराने सेनापति के दाबारी ख़ानदान के मुखिया को उसकाया। वह मुखिया पेशवा की उन्नति देखकर भीतर ही भीतर जल रहा था। आसफ़जाह की सहायता पाकर उसने ३५ हज़ार आदमियों की सेना इकट्ठी की। उनको लेकर वह दक्खिन की ओर बढ़ा और ज़ाहिर किया कि वह साहू राजा को पेशवा के पंजे से छुड़ाने जा रहा है। बाजीराव के पास इतनी बड़ी सेना नहीं थी लेकिन उसमें साहस और वीरता थी। वह अपने सामने किसी को कुछ नहीं समझता था। वह फ़ौरन् नर्मदा पार करके गुजरात में गया। बरौदा के पास दाबारी का सामना हुआ। लड़ाई में बालाजी की जीत रही।

दाबारी ने अपनी हार देखकर अपने लड़के को अपना वारिस बनाया। चूंकि लड़का नाबालिग़ था उसकी मा वली मुक़र्रर हुई। दाबारी से छुट्टी पाकर बाजीराव आसफ़जाह को सबक़ सिखाने के लिये तैयारी करने लगा। लेकिन थोड़े दिन के बाद उसने सोचा कि आसफ़जाह से दुश्मनी करने में नुक़सान ही नुक़सान है। आसफ़जाह ने भी सोचा कि बाजीराव से वैर करने में उसका कल्याण नहीं है। इन बातों को सोच विचारकर दोनों ने आपस में सुलह कर ली।

बाजीराव का इरादा था कि महाराष्ट्र राज्य केवल दक्खिन में परिमित न रहकर हिंदुस्तान भर में फैले। लेकिन मुग़ल कब यह बात खुशी से बरदाश्त कर सकते थे ? इसलिये उसके रास्ते में बराबर अड़चनें डाली जाती थीं। बाजीराव के गुजरात छोड़ते ही चौथ देना बंद कर दिया गया। सर-बुलंदखां वहां से हटा दिया गया। उसकी जगह पर अजित-सिंह का लड़का अभयसिंह तैनात किया गया। लेकिन अभय में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह मरहठों का सामना कर सकता। इस छेड़ छाड़ से नाराज़ होकर बाजीराव ने क्रोधित होकर जमुना पार की। जमुना पार करके देखते देखते वह दिल्ली के फाटक पर पहुँच गया। इस काम से बाजी-राव की बहादुरी मालूम होती है। लेकिन वीरता के साथ साथ उसमें राजनीति-पटुता भी अपूर्व थी। दिल्ली पहुँचकर वहां और अपने रास्ते में भी वह बहुत कुछ लूट पाट कर सकता था लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। इससे लोगों ने समझ लिया कि मरहठे निरे लुटेरे नहीं हैं। वे जहां युद्ध करके मुल्क जीत सकते हैं वहां उस देश का प्रबंध भी उत्तम प्रकार से कर सकते हैं, इस तरह बादशाह पर अपना रोब जमाकर शाही फ़ौज के छक्के छुड़ाकर बाजीराव दक्खिन में पहुँचा।

उस समय मुग़ल बादशाहत की जो दशा हो गई थी, उस का ठीक पता इससे मिल सकता है कि बड़ी कोशिश के बाद भी मरहठों का मुक़ाबिला करने के लिये ३४ हज़ार से

अधिक सेना इकट्ठी न हो सकी। सादतखां के भतीजे सफ़दर-जंग ने बड़ी मदद की। सब कुछ होते हुए भी बाजीराव दबाया न जा सका। आसफ़जाह ने विवश होकर संधि कर ली। नर्मदा और चंबल के बीच का मुल्क मरहठों को दे दिया गया। उसने बादशाह से ५० लाख रुपए भी मंजूर कराने के लिये कोशिश करने का वचन दिया। इसके लिये वह दिल्ली चला गया। उम्मीद थी कि आसफ़जाह की कामयाबी होती लेकिन तब तक एक ऐसी बात हो गई कि दूसरे कामों के लिये फ़ुर्सत ही नहीं थी।

भारतवर्ष अपने धन वैभव, अपनी सज्जनता, अपनी उदारता और सहनशीलता से लुटेरों की नज़रों में गड़ता रहा है। हमने अपने परिश्रम और सत्यता से कुछ धन एकत्र किया लेकिन उस धन की रक्षा करने के लिये यत्न नहीं किए। हमने सोना जमा किया लेकिन उसकी रक्षा के लिये लोहे के अस्त्र शस्त्र नहीं जुटाए। परिणाम यह हुआ कि जो हमसे धन और विद्या में कम थे अपनी उद्दंडता से हमारे घर पर चढ़ आए, हमारा सर्वस्व हरण करके छलांग मारकर कूदते हुए चल दिए। ज़रूरत थी कि जहां हम ज्ञान और धन संचय करने के लिये अहर्निशि परिश्रम करते थे, वहां उन पदार्थों की रक्षा के लिये भी समुचित उपाय करते। लेकिन हमने ऐसा नहीं किया। यही कारण था कि जहां हमारा अशिक्षित और असभ्य पड़ोसी

चैन की बंसी बजाते हुए न केवल आत्मरक्षा करता रहा बल्कि कभी कभी हमारे घर भी लूट पाट करता रहा; संसार में किसी को उसका अनभल करने का साहस नहीं हुआ। प्रतिकूल इसके भारत ने अपनी सर्वोच्चम सभ्यता के कारण जब जिसको आते देखा वह उसको आगे बढ़कर हाथ मिलाकर लाया, उसको अपने घर में आदर से स्थान दिया; अपना वस्त्र उसको पहनाया, अपना पेट काटकर उसको खाने को दिया, उसको अपने सगे भाइयों से बढ़कर मानता रहा। परिणाम यह हुआ कि जब हम सो गए, मज़े में सो भी नहीं पाए थे कि हमारे मिहरबान मिहमानों ने हम पर हमला किया, हमको बांधकर ज़मीन में ढुलका दिया, हमारा सर्वस्व छीन लिया। परिणाम यह हुआ कि हम भूखों मरने लगे, भूख के मारे धर्म कर्म की भी चिंता जाती रही। भाई भाई परस्पर लड़ने लगे, हमारा सोने का भारत जलकर स्वाहा हो गया। स्वाहा हो गया एक बार नहीं अनेक बार। हमारी ऐसी दशा हुई थी जब चंगेज़खां आया था, जब तैमूर का उपद्रव हुआ था, अब की बार उनसे बढ़कर हमारी दुर्दशा हुई जब नादिरशाह की चढ़ाई हुई थी। उस दिन का स्मरण करके हृदय काँप उठता है, हम दहल जाते हैं, अब भी जब हम किसी घोर अन्याय का नाम सुनते हैं तब उस को नादिरशाही कह कर पुकारते हैं। काबुल लेकर सरहद की पहाड़ी पारकर नादिरशाह पंजाब में आया। सिंध नदी

को नाव के पुल से पारकर वह आगे बढ़ा । लाहौर के सूबेदार ने बरायनाम मुक़ाबिला किया । इसके सिवाय किसी ने नादिरशाह का सामना नहीं किया । बढ़ते बढ़ते उसने जमुना को पार किया और वह दिल्ली से ५० कोस की दूरी पर आ पहुँचा। उसके आमद की ख़बर सुनकर मुहम्मदशाह घबरा गया । कहां उस रँगीले बादशाह का नाच मुजरा और कहां नादिर की बहादुर सेना !

बड़ी मुश्किल से एक शाही सेना तैयार करके भेजी गई। बादशाह आसफ़जाह को साथ लेकर करनाल पहुँचा और वहां जाकर उसने एक मज़बूत क़िले में निवास किया। अवध का सूबेदार सादतख़ां भी मदद करने के लिये पहुँच गया । दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। कहते हैं कि आसफ़जाह फूट गया और इसीलिये उसने लड़ाई में बिल्कुल मुक़ाबिला नहीं किया। नतीजा यह हुआ कि शाही पल्टन बरबाद हो गई, सिपहसालार ख़ानी दुर्रानी मारा गया । सादतख़ां क़ैद कर लिया गया । मुहम्मदशाह ने घबराकर सुलह का पैग़ाम भेजा। आसफ़जाह शाही पल्ची बनाकर नादिरशाह के पास भेजा गया । नादिरशाह बड़ी ख़ातिरदारी से उसके साथ पेश आया । मुहम्मदशाह और नादिरशाह की भेट हुई। दोनों ने एक ही महल में निवास किया । नादिरशाह की सेना नगर में फैल गई । यह होते हुए भी उसने आज्ञा दे दी थी कि किसी तरह की लूट पाट न

हुक्म दिया। अपनी सेना पर उसका कितना बड़ा प्रभाव था इसका पता इस बात से चल सकता है कि उसका हुक्म होते ही जो जहां था वह वहीं रुक गया। अगर तलवार किसी की गर्दन पर पहुँची थी तो वहीं रुक गई। लेकिन दिल्ली निवासियों के अभाग्य की इतिश्री यहीं नहीं हुई। अभी तक तो मार काट की बात थी, अब लेन देन का विषय आया। यह काम पहले तो सादतख़ां के सिपुर्द था। लेकिन वह दिल्ली पहुँचते पहुँचते मर गया। उसके मरने पर यह काम सरबुलंदख़ां और एक ईरानी के सिपुर्द हुआ। एक तो ये दोनों भलेमानुस खुद ही रिआया के सताने में पक्के थे, तिस पर नादिरशाह की ताकीद और सख़्ती। बड़ी ज़्यादती से धन खींचा जाने लगा। लोग त्राहि त्राहि करने लगे। लेकिन उनके दुःख का देखनेवाला कौन था, उनके दर्द का दूर करनेवाला कौन था?

सबसे पहले शाही ख़ज़ाने और ज़ेवरात पर क़ब्ज़ा किया गया। तख़्त ताऊस पर भी अधिकार जमाया गया। उसके बाद बड़े बड़े महाजनों को अपना सर्वस्व दे देना पड़ा। उसके बाद बड़े अफ़सरों के नंबर आए, फिर औसत दरजे के आदमी और अंत में ग़रीब दुखिया भी पीसे गए। पहरे बैठा दिए गए। लोग बाहर जाने से रोक दिए गए। लोग दबाए जाते थे और दबाकर उनसे धन का पता पूछा जाता था। पता मिलने पर उनका सब कुछ ले लिया जाता था। रुपए

वसूल करने के लिये हर तरह के अत्याचार किए जाते थे। शायद ही कोई भला आदमी बचा हो जिस पर मार न पड़ी हो। बहुत से लोगों ने अत्याचारों से पीड़ित होकर अपने प्राण दिए, बहुतों ने आत्महत्या कर ली। लोगों को खाना और सोना हराम हो गया था। घर घर से रोने और कराहने की आवाज़ आती थी। एक एक करके लोग सताए और क़त्ल किए जाते थे। इसके अलावा सूबेदारों पर टैक्स लगाए गए। जिस तरह से रुपया, वसूल किया जा सकता था वसूल किया गया।

चलते वक्त नादिरशाह ने मुहम्मदशाह से सुलहनामा कर लिया। उसने अपने लड़के का मुहम्मदशाह की लड़की से ब्याह किया। तख़्त पर बैठाकर उसने अपने हाथ से मुहम्मदशाह को आभूषण पहनाए। यह जले पर नमक छिड़कना था। लेकिन बे-शरम मुहम्मदशाह को इसका क्या पता था? उसकी जान बच गई वह इसी को ख़ैरियत समझता था।

अंत में ५८ दिन के बाद नादिरशाह हिंदुस्तान से विदा हुआ। कई करोड़ रुपए, कई करोड़ के सोने चांदी के बर्तन और गहने वह अपने साथ ले गया। हाथी, घोड़े और ऊंट भी साथ में गए। कई सौ कारीगर भी हिंदुस्तान से ईरान भेजे गए।

नादिरशाह के चले जाने पर बहुत दिन तक दिल्ली मृतकावस्था की शांति भोगती रही। नादिरशाह के जाने पर लोगों

नाम के उच्चारण से हृदय दहलता है, शरीर काँप उठता है। मालूम होता है कि एक बड़ी ही सुरम्य वाटिका में अनेक प्रकार के सुगंधित फूल फूले हुए हैं। कहीं हरित पत्रावली हृदय को शीतल करती है। पक्षी कलगान कर रहे हैं, शीतल मंद और सुगंध वायु के झोंके सब ताप और श्रम दूर कर रहे हैं। तब तक अचानक एक बनैला सूअर वाटिका के बँगले से निकलकर आता है। इस प्रमोदागार से सूअर कैसे निकला! लोग आश्चर्य करने लगे। विश्वास नहीं होता था। सोचा गया कि शायद यह इंद्रजाल का कौतुक मात्र हो। जब तक लोग विचार करें करें, वह महाराक्षस पशु एक एक करके फूलों को तोड़ने लगा, माधवी लतिकाओं को अपने भयानक दाँतों में समेटने लगा। लोग जो सामने गए मारे गए। जो सुरम्य उपवन था वह भयंकर वन होगया। उस नर-सूकर का नाम था रघुनाथराव या रघोबा। अच्छा होता कि उस नर-पिशाच का जन्म ही न हुआ होता। मरहठा जाति में फूट की अग्नि जलानेवाला, वैर का बीज बोनेवाला, सत्यानाश का पौधा रोपनेवाला यही था। शमशेरजंग मुसलमानिन के पेट से पैदा हुआ था।

बाजीराव के मरने पर बालाजी बाजीराव के सामने बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ थीं। लेकिन हर बात में पिता के बराबर न होने पर भी उसने धैर्य से सब बात का सामना किया। एक साल के घरेलू झगड़े के बाद नए पेशवा ने

उत्तरीय भारत की ओर दृष्टि घुमाई। इस काम में रघोबा ने पहले से विघ्न उठाया था। लेकिन अंत में पेशवा की जीत हुई।

इसके बाद रघोबा ने बंगाल पर चढ़ाई की। अलीवर्दीखां बंगाल का सूबेदार था। उसने बादशाह से मदद मांगी। बादशाह ने पेशवा से सहायता चाही और इसके बदले में मालवा का सूबा देने को कहा। पेशवा बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने सोचा कि शत्रु से बदला लेने का इतना अच्छा मौक़ा फिर नहीं मिलेगा। अपनी सेना लेकर वह बंगाल पर चढ़ गया। रघोबा पराजित हुआ। पेशवा मालवा वापस आया और कुछ दिन के बाद सतारा की ओर चला गया।

इधर मरहठों की यह दशा थी, उधर आसफ़जाह का लड़का नासिरजंग बाप से बाग़ी हो गया। उसके कुछ ही दिन बाद ७७ साल की अवस्था में आसफ़जाह की मृत्यु हुई। उसके मरने के बाद लड़कों में झगड़ा उठ खड़ा हुआ। उस झगड़े का और किसी सूबे पर असर नहीं पड़ा। उसके कुछ ही दिन के बाद साहू राजा का देहांत हो गया जिसके कारण मरहठों में बहुत दिन तक झगड़ा चलता रहा।

इसी बीच में एक दूसरे लुटेरे की नज़र हिंदुस्तान पर पड़ी। उस धावा करनेवाले का नाम था अहमदशाह अब्दाली। वह अब्दाली जाति का एक बहादुर आदमी था। थोड़ी ही अवस्था में उसने बड़ा नाम पैदा किया। वह नादिरशाह

क़ब्ज़े में करना चाहा। नतीजा यह हुआ कि वज़ीर और ज्यादा चौकन्ना हो गया।

वहां से छुट्टी पाकर वज़ीर पंजाब की ओर बढ़ा। अहमद-शाह दुर्रानी की इजाज़त से मीर मन्नू पंजाब की सूबेदारी कर रहा था। उसके मर जाने पर उसकी बेवा अपने बच्चे को लेकर वहां हुकूमत कर रही थी। वज़ीर साहब ने जोड़ तोड़ लगाकर उस बेवा की लड़की से अपनी शादी ठीक की। बारात धूमधाम से गई। बारात तो महज़ हीला था। असल मतलब तो मुल्क दख़ल करना था। मक्कारी करके उसने उस शरीफ़ बेवा को गिरिफ़्तार कर लिया। उस वक़्त उसकी क्या हालत हुई होगी इसको आप खुद सोच सकते हैं।

उस वक़्त ईश्वर को छोड़कर कौन उसका मददगार था। लाचार और दुखी होकर उसने शाप दिया कि इस, धोखे का नतीजा हिंदुस्तान को भुगतना पड़ेगा।

विधवा का वचन पूरा हुआ। अहमदशाह दुर्रानी को ख़बर मालूम हुई। उसने बदला लेने के लिये या यह कहिए कि बदले के हीले से धन कमाने के लिये हिंदुस्तान पर चढ़ाई की। ग़ाज़िउद्दीन जहां मौक़े पर अकड़ जाता था वहां वक़्त पड़ने पर खुशामद भी कर लेता था। दुर्रानी बढ़ते बढ़ते दिल्ली से बीस मील के फ़ासिले पर पहुँच गया। ग़ाज़िउद्दीन ने बुढ़िया को खुश कर लिया था। उसकी सहायता से वह

दुर्रानी के पास पहुँचा और क्षमाप्रार्थी हुआ। वज़ीर का जान तो छोड़ दी गई लेकिन रुपए के लिये तक़ाज़ा हुआ। आप कहेंगे तक़ाज़ा कैसा? क्या अहमदशाह दुर्रानी के बाप ने हिंदुस्तानी प्रजा को तक़ावी दे रखी थी जिसको वसूल करने वह आया था?

ऐसा तो कभी नहीं हुआ। इस दयावान् देश ने अपना पेट काट काटकर औरों को खिलाया, अपने बच्चों को भूखा रखा। इसको खिलानेवाला दुनिया में कौन देश पैदा हुआ? सच पूछिए तो हमारी सज्जनता ने हमारा नाश किया। न तो हमने किसी का कुछ खाया था और न कभी किसी का कुछ बिगाड़ा था। हम सोचते रहे कि न हम किसी को सतावेंगे और न कोई हमको कष्ट देगा। हमने नहीं सोचा कि महाभारत के समय से ही संसार की गति बदल गई। दुनिया का नियम हो गया जिसकी लाठी उसकी भैंस। लोग हमको इसलिये सताने लगे कि हममें उनके सताने की शक्ति नहीं थी। लोग हमारे मुँह में हाथ डालकर हमारा ग्रास इसलिये निकालते रहे हैं कि हमारे हाथ में इतना बल नहीं था कि हम उनके हाथ की उँगलियां मूली की तरह टुकड़े टुकड़े कर दें। हमारी देवियों की तरफ़ वे दुष्ट इसलिये देखते रहे कि हम उनकी आँखों को गरम लोहे से खींचकर बाहर न निकाल सके। यही कारण था कि चंगेज़, तैमूर और नादिर ने भारत को अपनी बपौती जागीर समझकर लूटा,

हमको अपनी रिआया समझकर सताया, उन असभ्यों में प्रजापालन का भाव नहीं था इसलिये हम क़त्ल भी किए गए। अहमदशाह इन बातों में किसीसे कम नहीं रहना चाहता था। इसलिये जब मौक़ा हाथ लगा वह इस अभागे देश पर चढ़ आया था।

अब की उसका तीसरा हमला था। दिल्ली की जो दुर्दशा होने को थी हुई। नादिरशाह के अत्याचारों का द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया गया। दुर्रानी नादिरशाह के समान क्रूर नहीं था लेकिन सेना पर नादिरशाह के समान उसका अधिकार भी नहीं था। इसलिये सिपाहियों ने छूटकर लूट पाट करना आरंभ किया। जिसको चाहा मारा, जिसे चाहा काटा। कोई मना करनेवाला नहीं था, कोई रोकनेवाला नहीं था। इधर दिल्ली इस तरह तबाह की जा रही थी उधर ग़ाज़िउद्दीन दूसरे सूबों से धन उगाहने के लिये भेजा गया था। अहमद-शाह का सबसे बड़ा अत्याचार और अन्याय मथुरा में हुआ। रात में किसी त्यौहार के समय हमला हुआ। निर्बल, निस्सहाय, और निरर्थक कृष्ण-भक्त घास की तरह काटे गए। देवमंदिर लूटे और तोड़े गए। इतिहासलेखकों ने इस कर्म के लिये दुर्रानी को खूब कोसा है। लेकिन इसमें लुटेरे से बढ़कर दोष था उन लोगों का जो हाथ पर हाथ रखकर सदा लुट जाने के लिये, पिट जाने के लिये, जौनपुरी मूली की तरह कट जाने के लिये तैयार रहते हैं।

ऐसे लोगों के लिये क्या कहा जाय ? ऐसे बेमतलब लोग जब तक ख़ैरियत से रहें तभी तक तअज्जुब है।

कहां योगिराज कर्मवीर वासुदेव द्वैपायन कृष्ण, कहां उनकी साहस भरी, उमंग भरी, वीरता और तेज भरी अमृतमयी कर्मयोग की शिक्षा, कहां स्वत्व के लिये भाई से भी लड़ने की सम्मति, कहां बात बात में पुरुषार्थ का उपदेश, कहां उस ज्योतिर्मय, पराक्रममय, ज्ञानमय, गौरवमय अच्युत के नाम की आड़ में स्वार्थ, लोलुपता, कादरता, और नपुंसकता का सग्रह! आश्चर्य! शोक! धिक्कार!

मथुरा के बाद आगरे की आफ़त आई। लूट का माल लेकर चलते वक़्त दुर्रानी ने मुग़ल कुल की एक कन्या से विवाह किया। साथ ही साथ उसके लड़के का ब्याह भी उसी खानदान की एक शाहज़ादी से हुआ। अहमदशाह के चलते वक़्त बादशाह ने हाथ जोड़कर आरज़ू की कि वह वज़ीर के हाथों में न छोड़ा जाय। उसकी रक्षा के लिये रुहेला सरदार नजीबुद्दौला सिपहसालार मुक़र्रर हुआ। दिल्ली! महाराज युधिष्ठिर की नगरी! वीर मुग़लों की राजधानी! तुम्हारी यह दीनावस्था कि तुम्हारा शासक एक लुटेरे से अपनी प्राणरक्षा की भिक्षा करे।

ग़ाज़िउद्दीन कब यह बात बरदाश्त कर सकता था? उसने बदला लेने के लिये मरहठों से मदद ली। थोड़े ही दिन के बाद ग़ाज़िउद्दीन की मौत हो गई। लेकिन मरहठों ने अपना

काम जारी रखा। उन्होंने दिल्ली पर क़ब्ज़ा कर लिया। पंजाब भी इनके हाथ आ गया। दुर्रानी लोग सिंध नदी पार करके यहां से चले गए।

पंजाब के बाद मरहठों ने अवध को हथियाना चाहा। यही नहीं उनका इरादा था कि समग्र उत्तरीय भारत पर अधिकार जमा लें। दक्षिण देश तो पहले ही से उनका था। इस तरह हिमालय से कन्याकुमारी तक उनका अधिकार जम जायगा, एक बार फिर हिंदू स्वतंत्रता का शंखनाद हो! लेकिन परमात्मा को यह स्वीकार नहीं था क्योंकि मरहठों में इतनी योग्यता नहीं थी।

यद्यपि मरहठे स्थायी रूप से भारतवर्ष के स्वामी न हो सके, तिस पर भी उस समय समग्र देश किसी न किसी प्रकार से उनके हाथ में था। अटक से कटक तक उनका प्रभुत्व छाया हुआ था। वे जो करते थे वही होता था, वे जो कहते थे वही किया जाता था, वे जैसी आज्ञा देते थे, लोग उसीके अनुकूल बर्तते थे। उनकी आज्ञा भंग करके कोई कुशल से नहीं रह सकता था।

मरहठों के प्रभुत्व का समाचार सुनकर अहमदशाह दुर्रानी फ़ौज लेकर हिंदुस्तान वापस आया। उसके आने की खबर सुनकर मरहठे पंजाब छोड़कर चले गए। देखते देखते दुर्रानी ने अपनी सेना के साथ सहारनपुर के सामने जमुना पार की। ग़ाज़िउद्दीन ने देखा कि अब खैरियत

नहीं है। उसने बादशाह के क़त्ल का हुक्म दिया। उस पापी के नीच नौकरों ने बादशाह को छुरे से क़त्ल करके जमुना के रेते में डाल दिया। बादशाह के कपड़े तक उतार लिए गए। जो एक समय दिल्ली के राजसिंहासन को विभूषित करता था मरने पर उसके शरीर पर वस्त्र तक नहीं। ग़ाज़िउद्दीन खुद जान लेकर भागा और जाटों की शरण में चला गया।

दुर्रानी के आगमन पर पेशवा ने यथाशक्ति खूब तैयारी की। मरहठा पैदल सेना बड़ी सजी हुई थी। उसमें कई योरोपियन सेनापति थे। मरहठा तोपख़ाना भी अब मुग़लों से किसी तरह खराब नहीं था। मुग़लों के ढंग के सामान भी उन्होंने तैयार कर लिए थे।

अहमदशाह का मुक़ाबिला करने के लिये दो मरहठा सेनाएं अलग अलग तैयार की गईं। लगभग तीस हज़ार के सिपाही थे। मरहठों की लूटपाट के कारण लोग उनसे खुश नहीं थे, इसलिये दुर्रानी के आने का ठीक पता उनको नहीं मिल सका। अहमदशाह अचानक आ पहुँचा। पहले दाताजी सींधिया की सेना का मुक़ाबिला हुआ। दो तिहाई सिपाही मारे गए और सींधिया खुद लड़ाई में काम आया। दूसरी सेना माल्हरराव हुलकर के अधिकार में अभी दूरी पर थी। सींधिया के पराजय का हाल सुनकर हुलकर

-चंबल के दक्खिन ओर भागा। लेकिन फ़तहयाब अफ़ग़ान पहुँच गए। हुलकर की सेना भी पराजित हुई।

दोनों सेनाओं के पराजय का समाचार दक्खिन में पहुँचा। मरहठों ने दुर्रानी का सामना करने की बड़ी ज़बर-दस्त तैयारी की। वीर मरहठों की सर्वोत्तम सेना इकट्ठी की गई। वे जैसे वीर थे उनको सेनापति भी वैसा ही बहादुर मिल गया था। पल्टन का कमांड दिया गया सदाशिवराव भाऊ को। मरहठा जाति ने अपने सर्वोत्तम पदार्थ भाऊ की सेवा में अर्पण किए। इसमें संदेह नहीं कि भाऊ बड़ा ही प्रबल वीर था। उसके समान पराक्रमी और साहसी के आधिपत्य में मरहठा सेना ने मालूम नहीं क्या कर दिया होता यदि भाऊ में अहंकार का भाव न होता। इसी दोष ने उसका सत्यानाश किया, मरहठा जाति का सर्वनाश करके हिंदूजाति का चौका लगाकर सोलहो आने अंटाढार किया।

पेशवा का लड़का विश्वासराव सहायता के लिये भेजा गया। मदद में बहुत सी राजपूत पल्टनें भी आई थीं। ३० हज़ार जाटों को लेकर सूरजमल भी सहायता के लिये ाया था। सूरजमल ने एक बड़ी अच्छी नसीहत दी थी जेसके मानने से शर्तिया कामयाबी होती। उसने समझाया के तोपख़ाने और बड़ी बड़ी बंदूकें जाट इलाक़े में छोड़ ़े जायँ जहां क़िलों में उनकी रक्षा होगी। घोड़ों पर

दुश्मन का मुक़ाबिला किया जाय । दुर्रानी लोग कई महीने हिंदुस्तान में रह चुके हैं । अब वे जल्द अपने मुल्क वापस जायँगे । बहुत से मरहठा अफ़सरों ने भी राजा की बात का समर्थन किया । लेकिन "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" ।

भाऊ ने किसी की बात न सुनी । वह अभिमान में चूर था । उसको ख़याल था कि जब वह सीधे रास्ते से दुश्मन को दम की दम में शिकस्त दे सकता है तो दावँ पेंच से क्या फ़ायदा । सूरजमल की बड़ी मानहानि हुई । इसके पहले भी भाऊ ने राजा का कई बार अपमान किया था । वह सूरजमल को साधारण ज़मींदार समझता था । वह कहा करता था कि राजनीति ऐसे लोगों के समझने की चीज़ नहीं है । बहुत से मरहठा सरदारों ने भी इसको बहुत बुरा माना ।

जो हो सज धजकर और उचित तैयारी करके भाऊ ने दिल्ली का रास्ता लिया । थोड़ी सी दुर्रानी सेना राजधानी की रक्षा कर रही थी । एक तरफ़ की दीवार से मौक़ा पाकर मरहठे ऊपर चढ़ गए । भाऊ ने इस जीत का बड़ा ही अनुचित व्यवहार किया ।

उसने महलों को तोड़ा, मसजिद और मक़बरों को तोड़कर वहां के जवाहिरात पर क़ब्ज़ा किया । दीवान आम की चांदी की चांदनी तोड़ डाली गई । जितने तख़्त और ज़ेवरात मिले ले लिए गए । उसने चाहा कि विश्वासराव को हिंदुस्तान का शाहंशाह मशहूर करें । लेकिन लोगों ने सम-

बारहवाँ अध्याय ।

शाहआलम सानी ।

सन् १७७१–१८०२ ई०

यह दिल्ली का आखिरी मुसलमान बादशाह था। इसने आठ दस वर्ष का समय इलाहाबाद की ओर व्यतीत किया। नजीबुद्दौला नायब की हैसियत से दिल्ली में हुकूमत करता रहा। नजीबुद्दौला के मरने के बाद मरहठों की सहायता से बादशाह दिल्ली पहुँचा। कुछ दिन सुख से कटे लेकिन निर्बल के हाथ में शासन की बागडोर कब तक और कैसे रह सकती है? बिजली की तारों में उतना बल नहीं है जितनी सल्तनत की डोरी में है। उसको पकड़ने के लिये बड़ा बल चाहिए, बड़ी चतुरता चाहिए।

नजीबुद्दौला के लड़के ग़ुलाम क़ादिर ने रुहेलों को लेकर शाही क़िले पर हमला किया। उसने क़िले पर अधिकार जमाकर बादशाह को क़ैद कर लिया। उसने बादशाह को ज़मीन में पटककर कटार से आंखें निकलवा लीं। बेगमों के कपड़े उतरवा लिए गए।

महाजी सींधिया ने खबर पाकर क़ादिर को नीचता का दंड देने का प्रण किया। दिल्ली पहुँचकर उसने बड़ी निर्दयता से क़ादिर के प्राण लिए। अंधा बादशाह सुख में रखा

गया। सींधिया स्वयं उसके प्रतिनिधि पेशवा के नाम से शासन करने लगा।

इधर अँगरेज़ों का आगमन हो गया था। धीरे धीरे इनका प्रताप बढ़ता गया। बुद्धि से इन्होंने बड़े बड़े बलवान राजाओं को नीचा दिखाया। सन् १७५७ ई० में प्लासी युद्ध की सफलता ने इनका पैर बंगाल में जमा दिया था। सन् १७७५ ई० में शुजाउद्दौला के मरने पर अवध में भी इन लोगों का दबदबा जम गया। इधर रघोबा की विभीषणी नीति ने पनपती हुई मरहठा जाति को और भी रसातल भेजने का बीड़ा उठाया। मैसूर में हैदरअली का बल बढ़ा था। उसके लड़के टीपू ने बाप का इलाक़ा अपने क़ब्ज़े में रखा। लेकिन ईश्वर को कुछ और ही मंज़ूर था। वह चाहता था कि जिस तरह नदी नालों का जल सिमटकर समुद्र में जाता है वैसे ही सब छोटे मोटे भारतीय राजे अँगरेज़ जाति के अधीन हो जायँ। अस्तु सन् १७६६ ई० में अँगरेज़ों से लड़कर टीपू पराजित हुआ और मारा गया। ६२६ तोपें, सामान सहित १ लाख बंदूकें, १ करोड़ से अधिक रुपए और बहुत से जवाहिरात अँगरेज़ों के हाथ लगे।

उपर्युक्त घटनाओं से अँगरेज़ों का बल इतना बढ़ गया था कि उन्होंने दिल्ली पर चढ़ाई करके मरहठों की शक्ति का युक्ति से सामना करके शाहआलम को अपने हाथों में किया। सन् १८०३ ई० से बादशाह अँगरेज़ों की पेंशन भोगता रहा।

इस तरह प्रतापी मुहम्मद क़ासिम का रोपा हुआ, गजनी और गोर की निगरानी में पला, गुलाम, ख़िल्जी, तुगलक़, सैयद और लोदी के हाथों से रखाया हुआ, अकबर का सींचा हुआ मुसलमान राज्य औरंगज़ेब की अदूरदर्शिता के ताप से झुलसकर शाहआलमसानी के समय में असृमय अंतरिक्ष की गोद में विलीन हो गया।

वैसे तो छोटी मोटी मुसलमानी रियासतें बहुत दिनों तक चलती रहीं और ब्रिटिश राज्य की छत्र छाया में अब भी हैं। लेकिन स्वतंत्र भारतीय मुसलमानी राज्य का सूर्य सन् १८०२ ई० में अस्त हो गया और अस्त हो गया सदा के लिये।

अँगरेज़ों को बाद में भी बहुत सी लड़ाइयां लड़नी पड़ीं लेकिन वे लड़ाइयां औरों से हुईं। तीसरे पानीपत के युद्ध में मरहठे निर्बल हो गए थे, एक तरह से उनका सर्वनाश हो गया था। लेकिन प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ महाजीराव सींधिया ने अपने यत्न से मरहठा भ्रातृमंडल (Maharatta Confederacy) स्थापित किया था। उसी संयुक्त शक्ति के साथ अँगरेज़ों का बहुत दिन तक मुक़ाबिला रहा। अंत में वे सब पराजित हुए और अँगरेज़ी सरकार के मित्र बन गए।

सन् १८५७ ई० में एक बहुत ही शोचनीया दुर्घटना हुई। अनेक कारणों से हिंदुस्तानी सिपाहियों ने विद्रोह किया। अशिक्षित प्रजा ने बिना सोचे समझे कुतूहल वश उनका साथ दिया। कुछ दिन तक देश भर में अशांति फैल गई

थी। जिसने जिसको पाया लूटा। जो मिल गया मारा काटा गया। यह उपद्रव न तो धार्मिक था और न तो राजनैतिक। अगर ऐसा भाव होता तो या तो हिंदू मिलकर मुसलमानों पर छापा डालते या मुसलमान "अली अली" करके हमारे मंदिर और मकानों पर चढ़ आते। अगर बलवाइयों का राजनैतिक उद्देश्य रहा होता तो हिंदू मुसलमान दोनों मिलकर अँगरेज़ और अँगरेज़ी सरकार के पीछे पड़ते। लेकिन बात यह नहीं थी। सभी देशी रजवाड़ों ने अँगरेज़ों की सहायता की। सिक्खों ने इनकी मदद के लिये जी जान लड़ा दी। एक मात्र स्वतंत्र हिंदू राज्य नैपाल ने बड़ी मदद की। इनके अतिरिक्त साधारण लोगों ने भी अँगरेज़ों को शरण देकर अपनी सज्जनता और दूरदर्शिता का परिचय दिया। उनकी राजभक्ति का फल आज भी उनके वंशज जागीर रूप में भोग रहे हैं।

इससे साफ़ मालूम होता है कि हिंदुस्तानी प्रजा ने अँगरेज़ी राज्य को प्रसन्नता से स्वीकार किया है। अँगरेज़ों ने भारत को लड़कर नहीं लिया और न उन्होंने हमारा रक्त बहाया। इसीलिये हम समझते हैं कि वे हमारे दुश्मन नहीं हमारे थातीदार और प्रबंधकर्ता हैं, हमारे मित्र और शिक्षक हैं।

जो हो, अँगरेज़ी राज्य का वर्णन इस पुस्तक के विषय से बाहर है। जिस मुसलमानी राज्य का हम इतिहास लिख

रहे थे, जिसकी वीरता की हमने प्रशंसा की थी, ऐक्य को सराहा था, स्वार्थांधता को धिक्कारा था और क्रूरता की निंदा की थी वे मुसलमान शासक भारतीय रंगभूमि में अपना तमाशा दिखाकर चल बसे। उनके साथ ही साथ यह इतिहास भी समाप्त हुआ लेकिन मुसलमान शासकों के वंशज अब भी हैं। वे हमारे शत्रु होकर आए थे लेकिन भाई बनकर रह गए। निस्संदेह हिंदू और मुसलमान भाई हैं। हम दोनों सगे भाई हैं।

जिसने हमारे मंदिरों को तोड़ा, हमारी ललनाओं का सतीत्व भंग किया, हमारे साथ अनेक और भयंकर अत्याचार किए वे स्वयं मृत्यु के मुख में चले गए, सर्वनाश की गोद में विलीन हो गए। न्यायकारी पिता के सामने उनको अपने कामों का जवाब देना पड़ा होगा। इतना ही नहीं उनको अपने किए का फल भी भोगना पड़ा होगा। क्योंकि परमात्मा सर्वज्ञ और सर्वांतर्यामी है। उसको धोखा दे देना मनुष्य की शक्ति के बाहर है।

लेकिन उनका पाप उनके साथ गया। पाप और पुण्य किसी जाति के अलग अलग गुण नहीं हैं। पुण्यात्मा और पापी सब में रहते हैं। यदि औरंगज़ेब ने हिंदुओं के मंदिर तोड़कर पाप किए तो ब्राह्मण वंशज नानासाहब ने निरपराध अँगरेज़ स्त्री बच्चों को कटवाकर उससे करोड़ गुना अधिक पाप किया। अनेक मुसलमान बादशाहों

ने हमारी स्त्रियों को अपमानित किया था लेकिन उनसे पहले द्रोणाचार्य और भीष्म के देखते देखते दुःशासन ने महारानी द्रौपदी को नंगा करने का प्रयत्न किया था। पापी लोग सभी जाति में होते हैं। लेकिन अगर सच पूछिए तो वे सब जातियों से बाहर और परे हैं।

अगर मुसलमान शासकों ने अत्याचार किए थे तो उनके वर्तमान वंशजों का क्या अपराध है? क्या वे इस मामले में सर्वथा निरपराध नहीं हैं? क्या वे अब स्थायी रूप से भारतमाता के पुत्र और हमारे सगे भाई नहीं हैं? क्या वे हमारे साथ साथ सब तरह का दुख सुख नहीं भोग रहे हैं? क्या निवर्षण और दुकाल उनको कष्ट नहीं पहुँचा रहे हैं? क्या हमारे साथ साथ वे भी हमसे अधिक लग के शिकार नहीं हो रहे हैं? क्या हम लोगों ने एक दूसरे की भली और बुरी बातें नहीं सीख ली हैं?

यह भी नहीं कहा जा सकता है कि मुसलमानी शासन और मुसलमानों के संसर्ग से हमको हानि ही हानि हुई। [उ]नके संसर्ग से हमने निस्संदेह बहुत कुछ उदारता सीखी [और] बहुत कुछ भ्रातृभाव का पाठ पढ़ा है।

मुसलमानों का धर्म ऐतिहासिक और विदेशी है। उनके [म]त के प्रवर्तक हज़रत मुहम्मद ने अरब देश में जन्म ग्रहण [कि]या था और उन्होंने वहीं शरीर भी छोड़ा। उनकी क़ब्र [भ]ी वहीं बनी है। मुसलमानों में धार्मिक जोश भी बहुत है।

ये धर्म के सामने हर घड़ी अपना प्राण हथेली पर लिए रहते हैं। बात बात में ये अरब का स्वप्न देखते हैं, हर काम में ये अपने मत की पुकार करते हैं। मुसलमानी मज़हब सिकुड़कर क़लमे के अंदर आ गया है। मुसलमानी धर्म में जहां हद दरजे की विचार-संकीर्णता है वहां हद दरजे की आचार-स्वतंत्रता भी है। मुसलमान छुआछूत के बंधनों से सर्वथा विमुक्त हैं। वे किसी का पकाया हुआ, किसी तरह किसी भी साफ़ जगह में बैठकर खा सकते हैं। खाने की चीज़ें भी बहुत कम हैं जिनको वे हराम मानते हैं। जहां वे इसलाम को मुक्ति का एकमात्र द्वार समझते हैं, वहां वे यह मानने को तैयार नहीं हैं कि किसी जाति या वर्ण के लोगों के साथ खाने में वे धर्मच्युत हो जायँगे।

ऐसी विचार-परतंत्र और आचार-स्वतंत्र जाति का साबिक़ा पड़ा हिंदू जाति से जिसकी गति इस मामले में बिलकुल उलटी है। विचार में मुसलमान जितने ही परतंत्र हैं, हिंदू उतने ही स्वतंत्र हैं। जहां मुसलमान इसलाम को परमात्मपुरी का एकमात्र पथ मानते हैं, वहां हिंदू प्रत्येक धर्म द्वारा कर्मानुसार मुक्ति मानते हैं। हिंदू प्रत्येक मनुष्य, नहीं नहीं प्रत्येक जीव को परमात्मा का प्यारा मानता है। वह जीवमात्र में परमेश्वर का दर्शन करता है और कभी कभी तो जल और थल में सर्वत्र वह परमपिता का दर्शन करता है।

हिंदू जहां विचार में इतने स्वतंत्र हैं वहां आचार में बहुत ही संकीर्ण हैं। हम वैदिक काल के हिंदू धर्म की बात नहीं करते हैं। यहां मुसलमानी काल के हिंदू धर्म से हमारा मतलब है। आधुनिक हिंदू धर्म के नियमानुसार चारों वर्ण का परस्पर सहभोज्य नहीं है। ब्राह्मण तीन इतर वर्णों का पकाया अन्न ग्रहण नहीं कर सकता है। दक्षिणी ब्राह्मण के हाथ का भोजन पंचगौड़ भला कैसे करेंगे ! पंचगौड़ों में भी क्या सनाढ्य मांसभोजी कन्नौजियों के घर का अन्न ग्रहण कर सकते हैं ? मांसाहारी ब्राह्मणों में भी क्या कान्यकुब्ज काश्मीरी के घर जूठन गिराने की कृपा कर सकता है ? इतनी दूर क्यों जाते हैं कान्यकुब्जों के अंदर ही पटकुल महाराज धाकर के घर की पूरी भी नहीं ग्रहण करेंगे। पटकुलों में आपस में भी बिला रिश्तेदारी सहभोज्यता नहीं हो सकती है। रिश्तेदार के घर वे भोजन नहीं कर सकते हैं।

आप यह न समझें कि क्षत्री सब ब्राह्मणों का पकाया अन्न खा सकते हैं। कभी नहीं। राजपूत प्राचीन प्रथा के अनुसार केवल अपने प्रोहित का बनाया भोजन ग्रहण करेगा। क्षत्री लोग आपस में भी मीन मेख लगाते हैं। ऊँच नीच के पचासों जीने तै करते हैं। अगर आप सूर्यवंशी हैं तो हम भी चंद्रवंशी हैं। हम आपसे किस बात में कम हैं। अगर आप रामचंद्रजी के वंशज हैं तो हम भी षोडशकला के अवतार भगवान कृष्णचंद्रजी के कुल के हैं

वैश्यों में भी यही विडंबना है। अगरवालों के मालूम नहीं कितने घर हैं। सब एक से एक बढ़कर हैं। कलवार, कसोधन, कांदू, कसरवानी इत्यादि सैकड़ों जातियां वैश्यों में हैं जिनमें हर एक में पचीसों शाखाएं हैं। इनमें से खाने पीने के मामले में ये अंगद के चरण की तरह अकड़ जाते हैं। ऐसे मामलों में आप शूद्रों को भी किसी तरह कम न समझें। इनमें से कोई जाति दूसरी जाति के हाथ का पकाया भोजन ग्रहण नहीं कर सकती है। इनमें से कुछ जातियां तो ब्राह्मणों को धते बताती हैं। इनमें से जिनको आप सबसे छोटी और अछूत जातियां जानते हैं उनके नियम और उप-नियम सुनकर आप चौंक पड़ेंगे। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि चमार बारी के घर का जल भी नहीं ग्रहण कर सकता है। डोमड़ा धोबी के घर का भोजन मृत्यु के डर से भी प्रसन्नता से नहीं कर सकता है।

इतने कठिन नियमों और रीतियों ने हिंदू जाति को जकड़-कर बाँध दिया है। उसके हाथ पैर बंधन के कारण एक में एक जकड़ गए हैं। सामने से ललकारते हुए शत्रु को हम ताड़ना कैसे दें, सम्मुख से आते हुए भाई को हम किसके हाथों से पकड़कर गले लगावें, कैसे उसको आलिंगन करें। जब हिंदुओं में परस्पर इतनी सख़्ती है फिर मुसलमानों के साथ भैयाचारे का बर्ताव कैसे हो सकता था, उनके साथ सहभोजन का प्रश्न कौन उठा सकता था? बंगाल के कुछ

ब्राह्मण मुसलमानी भोजन की गंध से जातिच्युत हो गए। मुसलमानों का स्पर्श किया हुआ जल भी हम नहीं ग्रहण कर सकते हैं। देहातों में मुसलमान और हिंदू साथ साथ एक कूएँ से जल नहीं भर सकते हैं। जो वर्तन मुसलमान से छूजाता है उसको हम आग में जलाते हैं।

अस्तु दो कट्टर जातियों का भरतमिलाप हुआ। दोनों अपनी कट्टरता पर अड़ी रहीं। लेकिन इससे भी बढ़कर अभाग्य की बात यह हुई कि हर एक ने अपने प्रतिवादी की धार्मिक कट्टरता को द्वेष और वैमनस्य समझा। ग़लत फ़हमी दिन दिन बढ़ती गई, दुश्मनी की बुनियाद पड़ गई। मुमकिन था कि अगर हम मिलते और अकसर मिलते तो भेदभाव कम हो जाता लेकिन यह भी न होने पाया। पंडित और मौलानों ने हमको नहीं मिलने दिया।

पंडित ने कहा कि सामने दाढ़ीवाला हाजी जो खड़ा है वह म्लेच्छ है, उसकी छाया के स्पर्श से नरकवास होगा। मौलवी ने हमारे मुसलमान भाइयों को बतलाया कि कंठी, माला, जनेऊ और चुटियावाला बिरहमन क़ाफ़िर है। वह क़ाबिल रहम नहीं है, हर सूरत में क़ाबिल नफ़रत है।

ये दोनों साहब हमको बहुत गुमराह कर चुके। हम इनके फेर में पड़कर बहुत भटक चुके, भटककर बहुत सदमे उठा चुके, सदमे उठा उठाकर बहुत रो चुके, रो रो कर बहुत ज़िल्लतें भुगत चुके। अब जाग जाने का